ॐ

शान्ति-संदेश

वर्ष—६ सितम्बर—१९५७ अंक —७

कोई सफा न देखा दिल का

कोई सफा न देखा दिल का, साँचा बना भिलमिल का। टेक॥
कोई बिल्ली कोई बगुला देखा, पहिरे फकीरी खिलका॥
बाहर मुख से ज्ञान छाँटते, भीतर कोरा छिलका॥
भजन करन में गजब आलसी, जैसे थका मंजिल का।
औरन को पीसन में सुरमा, जैसे बट्टा सिल का॥
पढ़े-लिखे कुछ ऐसेहि वैसे, बड़ा घमंड अकिल का।
जहरी वचन यों मुख से निकलैं, साँप निकलता बिल का॥
भजन बिना सब जप तप झूठा, झूठ तवका फजल का।
क्या कहिये गुरुदेव न पाया, महरम आँख के तिल का॥

—काष्ठजिह्वा स्वामी

आज की राजनीति और शान्ति

सम्पादक की कलम से

" आज की दुनिया में राजनीतिक सिद्धान्तों का अध्ययन-मनन जितना आवश्यक हो गया है, उतना पहले कभी नहीं था। " ये शब्द किसी राजनीतिक नेता के नहीं, बल्कि राजनीति शास्त्र के परम पारंगत प्रोफेसर रेमंड गार्फिल गैटेल (कैलिफोर्नियां विश्वविद्यालय) के हैं। कारण बतलाते हुए वे आगे कहते हैं, "आज हम ऐसे उलझे हुए समाज में रह रहे हैं जो गुत्थियों से भरा होते हुए भी तेजी से बदल रहा है। आज राजनीतिक चिन्तन पद्धति की विभिन्न शैलियों की फिर से परीक्षा ली जा रही है और राजनीतिक संस्थानों का पुनर्गठन किया जा रहा है। नये ढंग के प्रयोग हो रहे हैं शासन की शैली में। दो विश्वयुद्धों ने सम्पूर्ण मानव-समाज के संगठन-संस्थान, सरकारी कार्यों का क्रियाक्षेत्र, विभिन्न राज्यों के आपसी सम्बन्ध आदि विषयों से सम्बन्धित विचारों में बहुत से हेर-फेर ला दिये हैं। आज की दुनिया के तमाम आधुनिक राज्यों में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मामलों पर घनघोर विवाद हो रहा है। इन तमाम प्रश्नों पर जनसाधारण की राय की प्रमुखता से इन्कार नहीं किया जा सकता। किसी भी राय को ठोस तभी कहा जायगा जब कि वह राजनीतिक घटनाओं एवं सिद्धान्तों की सही जानकारी एवं शुद्ध चिन्तन पर आधारित हो।

समाज शास्त्र के दूसरे विद्वान प्रोफेसर किम्बॉल यंग की राय सुनिये। अन्तिम बात तो यह है कि प्रजातांत्रिक संस्कृति के सामने जो सर्वग्रासी खतरा उपस्थित है तथा विश्व-युद्ध का जो उदय हम अपने सामने देख रहे हैं वे हमें मजबूर कर देते हैं कि हम शक्ति के प्रयोग की प्रकृति एवं प्रयोग पर विचार करें। कल-कारखाना एवं उद्योग पर आधारित अपने इस उदार सभ्यता को अगर नष्ट होने से बचाना है तो शक्ति का प्रयोग, जनसाधारण के बीच शक्ति की क्रियाशीलता, इस क्रियाशीलता के विभिन्न रूप, फिर इस शक्ति के प्रयोग के उचित अधिकारी आदि प्रश्नों की जड़ में जो प्रश्न है—शक्ति को काम में लाने की नैतिक जिम्मेदारी— उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा।

आज की दुनिया में " शुद्ध चिन्तन " और " नैतिक जिम्मेदारी " जैसे शब्दों में दुनिया के लोग बातचीत करने लगे हैं। पहले ऐसे शब्द केवल भारतवासियों के मुंह से ही निकला करते थे। इसका कारण भी है। भारत ही एकमात्र ऐसा देश है दुनिया में जिसने कभी शक्ति का प्रयोग दूसरों पर हमला करने के लिये नहीं किया। इसी लिये भारत इन प्रश्नों पर विचार करने का अधिकारी है।

भारत के प्रत्येक महापुरुष ने केवल भारत के बारे में ही विचार नहीं किया, अपितु, विश्व के मानव-समाज का ध्यान रख कर विचार किया। महात्मा गांधी जी महाराज कहते हैं, "मैं नहीं चाहता कि अपने घर को मैं चारों तरफ से दीवार से घेर कर उसके दरवाजों एवं खिड़कियों को बंद कर दूं। मैं चाहता हूँ कि सभी देशों की सांस्कृतिक हवा यहां स्वतंत्रता पूर्वक आवें, फिर भी मेरे पांव नहीं उखड़ेंगे। मेरा धर्म जेल की चहार दीवारी के अन्दर बन्द रहने वाला नहीं है।"

गांधीजी की शब्दों में वेदों की (आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः। ऋग्वेद, १/८९/१ सभी ओर से शुभ एवं सुन्दर विचार हमें प्राप्त हों) प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ती है।

भारत के महापुरुषों ने ऋग्वेद के जमाने से आज तक इस बात का खयाल रक्खा है कि वे केवल अपने लिये ही जीवित नहीं रहें। जब कभी भारत अपने महापुरुषों के उपदेश को भूल कर स्वार्थ परायण हो गया, तभी वह नीचे गिरा और गुलामी की यंत्रणा भुगतता रहा। आज भी भारत की उन्नति इसी बात पर

(शेषांश पृष्ठ २९ पर देखें)

गृहस्थ बन कर घर में रहो और साधन-भजन करो !

पूज्य स्वामी मेंहीँ दास जी महाराज

प्यारे महाशयो !

हमलोगों का बड़ा भाग्य है अथवा हम पर ईश्वर की बड़ी कृपा है कि भारत में हमारा जन्म हुआ। यह देश अत्यन्त प्राचीन काल से आस्तिकता के भावों से भरा हुआ है। हमारे यहाँ—जब से बच्चे के मुँह में बोल आता है तभी से राम-राम, शिव-शिव, वाह-गुरु आदि कहलाते हैं। बच्चे से ही ईश्वर-स्थिति का बीज जमने लगता है। जबतक वह शब्द का कुछ भी बोध नहीं रखता, केवल यंत्र की तरह मुँह से कहता है, तबतक वह कुछ भी नहीं जानता कि, जो शब्द ईश्वर वाचक है, उसका अर्थ है, उसके लिये अपना भाव कैसा चाहिये ? जब वह बड़ा होता है, लोगों से सुनता है कि कोई एक महान् पुरुषोत्तम है, परमात्मा है, उसके अन्दर सब रहते हैं, उसी की शक्ति के अंदर सब हैं। उनकी प्राप्ति से अपना परम कल्याण होता है। जब वह ऐसा जानने लगता है, तब मानता है और पढ़-लिखकर, समझकर उसको दृढ़ता से जानता है, फिर भी, राम-राम कह कर उनको पहचानता नहीं, किन्तु श्रद्धा तो अवश्य होती है। पहले भी कुछ लोग ऐसे थे जो ईश्वर को नहीं मानते थे, यहाँतक कि अपने को भी नहीं मानते थे। शरीर प्राकृतिक रूप से बन गया है, उसीसे हम बोलते-चलते हैं। शरीर का नाश हो जायगा, कुछ नहीं रहेगा। ऐसा ज्ञान भी था, किन्तु बहुत कम। विशेष कर यही ज्ञान है कि शरीर नाश-वान है, इसके अंदर चेतन आत्मा अनाश है। परमात्मा भी है। हमारे यहाँ श्राद्ध-क्रिया होती है। इससे इतना वेदान्त सीखते हैं कि जो शरीर से चला गया है, शरीर का जलाना हो गया है, शरीर मिट्टी-रूप हो गया किन्तु शरीर में का रहने वाला कहीं चला गया है। उसकी अच्छी गति हो, इसके लिये श्राद्ध-क्रिया करते हैं। इससे भी जीव की नित्यता मालूम होती है। कथा के रूप में भी है कि शरीर छूटता है और जीवात्मा रहता है। सत्यवान एक राजपुत्र था। उसका राज्य छिन जाने के कारण वह जंगल में लकड़ी काट कर उसको बेचकर अपने परिवार का पालन-पोषण करता था। उसकी स्त्री का नाम था सावित्री। एक दिन नारद मुनि ने सावित्री से कहा कि तुम्हारा पति अल्पायु है। अमुक महीने की अमुक तिथि में उसका शरीर छूट जायगा। यह बात सावित्री ने किसी से नहीं कही। वह महीना आया और वह तिथि भी आ गयी। सत्यवान लकड़ी काटने के लिये नित्य की भाँति जंगल चलने लगा। सावित्री उनसे बहुत अनुनय-विनय कर,

वृद्ध श्वसुर तथा वृद्धा सास से अनुमति प्राप्त कर अपने पति के साथ जंगल चली गयी। सत्यवान एक वृक्ष की डाल पर बैठकर लकड़ी काटने लगा। लकड़ी काटने-काटते ही उसके सिर में भयानक दर्द पैदा हुआ। वह वृक्ष के ऊपर से ही बोला कि सिर में बहुत दर्द हो रहा है। सावित्री उनका अन्तिम समय जान कर बोली कि आप वृक्ष पर से शीघ्र नीचे उतर आवें। वह वृक्ष से नीचे उतरा। सावित्री अपने जंघे पर उनका सिर रख कर धीरे-धीरे उसे दबाने लगी। दर्द बढ़ता गया और बढ़ते-बढ़ते उसका अन्तिम क्षण भी आ गया। सत्यवान बेहोश हो गया। यमदूत उसके प्राण को लेने आये किन्तु सती सावित्री के तेज के सामने वह ठहर न सके। अंत में यमराज स्वयं आये और सत्यवान के स्थूल शरीर में से सूक्ष्म शरीर यानि लिङ्ग शरीर के साथ जीवात्मा को लेकर वहाँ से चलते बने। अनुनय-विनय करती हुई उनके पीछे- पीछे सावित्री भी चली। अपने पीछे सावित्री को आते देख यमराज ने कहा कि तू क्यों आती है, तू वापस लौट जा अथवा मुझ से अपने पति को जिलाने के अतिरिक्त अन्य कुछ वरदान लेकर, तू अपने घर चली जा। सावित्री ने क्रम-क्रम से अपने पति से सौ पुत्रों का पाना, अपने छिन गये राज्य का वापस होना, सास-श्वसुर जो अंधी और अंधे हो गये थे, फिर से उनको सूझने लगे आदि कई वरदान मांगे। यमराज ने प्रसन्न होकर सभी वरदान दिये। उनके मृत पति के स्थूल शरीर में जीव सहित सूक्ष्म शरीर को प्रविष्ट कर दिया। सत्यवान फिर जीवित हो उठे। इस कथा से जानना चाहिये कि स्थूल शरीर के छूटने पर उससे केवल जीवात्मा ही नहीं निकलता, स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर निकलता है। स्थूल के अंदर सूक्ष्म, सूक्ष्म के अंदर कारण, कारण के अंदर महाकारण। ये चार जड़ शरीर हैं और तब उनके अंदर चेतन आत्मा रहती है। चेतन भी एक प्रकार की देह है। यह चिदानन्द-मय देह है। श्री राम को भी बाल्मीकि ने कहा था कि "चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी॥" अभी हमलोग जड़ के चार शरीरों के सहित हैं। स्थूल शरीर छूटने पर बाकी तीन जड़ शरीर रहेंगे। जैसे अभी स्थूल शरीर ऊपर में है, उसी तरह स्थूल शरीर छूटने पर ऊपर में सूक्ष्म शरीर रहेगा। सत्यवान के स्थूल शरीर में लिङ्ग शरीर को प्रविष्ट किया गया, फिर वह जीवित हो गया। स्त्रियों में कितना तेज है, वह भी इस कथा से जानने में आता है। स्त्रियों के तेज के सामने यमदूत नहीं जा सका। जो स्त्रियाँ अपने में तेज नहीं रखतीं गोया, पातिव्रत-धर्म का पालन नहीं करतीं, उससे निस्तेज संतान पैदा होगी और संसार में उसका कल्याण नहीं होगा। स्त्रियाँ एक पातिव्रत-धर्म का पालन करें और पुरुष एक स्त्री-व्रत धारण करें। राजा विराट के यहाँ उसका साला कीचक महा बलवान था। किन्तु वह एक स्त्रीव्रत का पालक नहीं था, इसीलिये वह भीम से मारा गया। यदि वह द्रौपदी पर कुदृष्टि नहीं डालता तो उसका बल-क्षय नहीं होता और वह भीम के द्वारा मारा नहीं जाता। स्त्रियाँ पातिव्रत धारण करें और पुरुष एक पत्नी व्रतधारी बनें, श्री राम की तरह। पृथ्वीराज के विवाह के शौक के कारण यह देश पराधीन हुआ, इतिहास बताता है। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठे जीत सकते थे और तब सारे भारत में स्वराज्य फिर हो सकता था, किन्तु विवाह के शौक में अपने घर में पेशवा अपना दूसरा विवाह करने चला, यद्यपि उसको जवान लड़का था। दिल्ली की ओर सेना भेज

दिया, पीछे से उसे बल पहुँचाने के लिये कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। अन्त में प्रचण्ड हार के शोक में वह मर गया। जो पुरुष एक से अधिक विवाह के शौक में चलते हैं, वे अच्छा नहीं करते। आप तेजधारी बनें। जो एकस्त्रीव्रत का पालन करता है वह काम के वेग को रोकता है, काम के वेग को रोकने वाले वीर होते हैं। उनका शरीर खिन्न भी हो, फिर भी आत्मबल उनमें अधिक होता है। उनमें इतना आत्मबल होता है कि वे ईश्वर को भी प्राप्त करते हैं।

वर्त्तमान काल आधिभौतिक विज्ञान की प्रबलता का है। इसके प्रयोग में ईश्वर की सिद्धि नहीं होती। अथवा शरीर के अन्दर जो आत्मा है, इसकी भी सिद्धि नहीं होती। मैं इन वैज्ञानिकों से नम्रतापूर्वक कहता [illegible] विज्ञान का अन्त हो गया? तब वे [illegible] हैं—नहीं। मैं कहता हूँ कि जिस क्रिया [illegible] नहीं हुआ, उस अधूरी क्रिया से किसी पूरी क्रिया को झूठा क्यों बताते हैं? जैसे आधिभौतिक विज्ञान का प्रयोग करके लोगों को चकाचौंध कर देते हैं, उसी तरह आध्यात्मिक विज्ञान भी है और इसके प्रयोग द्वारा भी प्रत्यक्ष किया जाता है। वह विज्ञान योग शास्त्र का विषय है। पतंजलि मुनि जब नहीं [illegible] से यह योग शास्त्र है। इसके आदि गुरु [illegible]जी हैं। हाँ, पतंजलि ने उसे सूत्र-रूप में किया।

जो लोग आत्मा और ईश्वर को नहीं मानते हैं, उनसे मैं कहता हूँ कि मैं जो प्रयोग बताता हूँ, उसको [illegible] करके देखिये। यदि प्रयोग द्वारा प्रत्यक्ष नहीं हो, तब कहिये कि झूठा है। आधिभौतिक विज्ञान, प्रयोग करके बाहर में दिखलाता है किन्तु आध्यात्मिक [illegible]न अन्दर की चीज है। इसमें भी प्रयोग बताया जाता है। प्रयोग करके देख लीजिये। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आप ठीक-ठीक प्रयोग कीजिये तो प्रथम कुछ चिह्न अवश्य मालूम होगा। आप सूर्य को पहले नहीं देखते। आप चन्द्रमा में चाँदनी और तारे में प्रकाश, सूर्य का प्रकाश देखते हैं। फिर भी रात रहती है। रात के अंत होने पर उषा-ज्योति देखते हैं, वह सूर्य की ज्योति है। उसके बाद अरुणोदय देखते हैं; वह भी सूर्य की ही लालिमा है। फिर भी सूर्य को नहीं देखते, पीछे सूय को देखते हैं। उसी प्रकार दर्शनाभिलाषी साधक को जो-जो अपने अंदर में देखने में आते हैं वह वर्णन उपनिषद् और संतवाणी में है। आधिभौतिक तत्वों का प्रयोग करते हैं किन्तु आध्यात्मिक प्रयोग नहीं करते हैं। पहले से ही लँगड़े बन जाते हैं और कहते हैं कि हम से नहीं होगा। आप लंगड़े क्यों होते हैं? आप मनुष्य हैं, पशु नहीं। पशु को ज्ञान नहीं होता है। मनुष्य शरीर धारण करें और पशुवत आचरण करें, यह योग्य नहीं। विषयों में बहना पशुवत् बरतना है। ऐसा हमलोगों को नहीं बरतना चाहिये। हमको जब से होश आये तब से ही विषयों से निर्विषय की ओर जाना चाहिये। यह भूल है कि गृहीवासी से कथित साधन नहीं होगा। जिस देश में गीता जैसी पुस्तिका है, जहाँ संतवाणी मौजूद है वहाँ ऐसा नहीं कहना और जानना चाहिये। अर्जुन युद्ध छोड़ कर सन्यासी बनना चाहता था, उससे भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध करवाया और योगस्थ रह कर कर्म करने की शिक्षा दी। श्रीकृष्ण भगवान स्वयं गृहस्थ थे। कितने संतों ने गृहस्थी को छोड़ा और और कितनों ने गृहस्थी में रहकर ही जीवन बिताया। गुरु नानक की गद्दी पर दश गुरु हुए, सभी गृहस्थ थे। कबीर साहब के लिये कोई कहते हैं कि उन्होंने गृहस्थ

जीवन बिताया और कितने कहते हैं कि वे गृहस्थ नहीं थे। खैर ! जो कुछ भी हो, फिर भी वे संत थे और घर में रहकर ही संत हुए। उनकी ऊँची शिक्षा किसी विद्यालय में नहीं हुई थी। कबीर साहब एक अक्षर भी पढ़े नहीं थे और वे बड़े भारी ज्ञानी हुए। कितने कहते हैं कि कबीर साहब बहुश्रुत थे। रामानन्द स्वामी और सूफियों का उनको संग हुआ था। इस लिये वे इतने बड़े ज्ञानी हुए। किन्तु जब उनकी निज वाणी को पढ़ता हूँ तो मालूम होता है कि उनको अपने अन्दर में ही ज्ञान प्राप्त हुआ था।

"कबीर काया समुंद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइके जो रहै, मानिक लावै सोय॥
मैं मरजीवा समुंद का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक॥"
—कबीर साहब।

जैसे गो० तुलसी दास जी के लिये लोग कहते हैं कि उनको बाहर में भगवान् के दर्शन हुए थे। किन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी स्वयं कहते हैं—

एहि तें मैं हरिज्ञान गंवायो।
परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहिं,
बाहेर फिरत विकल भय धायो॥ १ ॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद,
अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल,
परम सुगन्ध कहां तें आयो ॥ २ ॥
ज्यों सर विमल वारि परिपूरन,
ऊपर कछु सेंवार तृण छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ,
चाहत यहि विधि तृषा बुझायो ॥ ३ ॥
व्यापित त्रिविध ताप तन दारुण,
तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपने धाम नाम सुर तरु तजि,
विषय बबूर बाग मन लायो ॥ ४ ॥
तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम,
मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो।
तुलसि दास प्रभु यह विचारि जिय,
कीजै नाथ उचित मन भायो ॥ ५ ॥"

आध्यात्म ज्ञान की पुस्तकें बहुत हैं, फिर भी योग्य गुरु की आवश्यकता है। जैसे बड़ी-बड़ी पुस्तकें रहने पर भी महाविद्यालयों में जाकर आचार्य से सीखते हैं। दार्शनिक लोग कहते हैं कि वह परमात्मा कैसा है, बताओ। परमात्मा का स्वरूप वेद, उपनिषद् तथा संतवाणी में अनादि, असीम, अनन्त कहा है। अनन्त, जिसकी सीमा नहीं हो। असीम और अनन्त का अर्थ मैं एक रखता हूँ। मैं अनन्त का अर्थ असंख्य नहीं करता। गो० तुलसीदास जी कहते हैं—

"व्यापक व्याप्य अखंड अनंता, । अखिल अमोघ शक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता । सब दरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख सन्दोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह विरज अविनासी॥
इहां मोह कर कारण नाहीं। रवि सन्मुख तम कबहुं कि जाहीं॥

भगवान के अवतार के लिये गोस्वामी तुलसी दास जी का विशद वर्णन है। उसमें गो० तुलसी दास जी को बड़ा प्रेम था। मेरे हृदय में भी श्रद्धा है। परन्तु गो० तुलसी दास जी यह भी कहते हैं—

"भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप॥
यथा अनेक वेष धरि, नृत्य करइ नट कोई।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपुन होइ न सोई॥"
(रामचरित मानस, उत्तरकाण्ड।)

'आपुन' अर्थात् आत्म स्वरूप, वह कैसा ? इसको

भी जानिये। श्रीकृष्ण भगवान ने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान बताया है, वहाँ क्षेत्र को बताया है—पाँच स्थूल तत्व, पाँच सूक्ष्म तत्व, दश इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार, चेतना, धृति, संघात, प्रकृति, इच्छा, द्वेष, सुख और दुःख, इन इकतीस तत्वों के समुदाय को सविकार क्षेत्र कहा है। इसके अतिरिक्त इस देह में जो है, वह क्षेत्रज्ञ है। शरीर को क्षेत्र और इसके अंदर रहने वाले को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यह तभी तक क्षेत्रज्ञ कहलाता है जब तक शरीर के बंधन में रहता है। महाभारत में लिखा है :—

"आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः॥"

म० भा० शा० १८७, २४।

महाभारत का ही छोटा किन्तु महातेजस्वी अंश गीता है। नररूप में आप श्रद्धा-भक्ति रखिये और क्षेत्रज्ञ को भी पहचानिये। ईश्वर की पहचान के लिये यहाँ तक है। कबीर साहब कहते हैं :—

"सर्गुण की सेवा करो, निर्गुण का करु ज्ञान।
निर्गुण सगुण के परे, तहँ हमारा ध्यान॥"

लोग कहते हैं कि कबीर साहब निर्गुणिया थे किन्तु वे सगुण को नहीं छोड़ते हैं और न निर्गुण को ही। फिर इन दोनों के परे भी बताते हैं। इसी तरह गीता में क्षरपुरुष और इन दोनों के परे पुरुषोत्तम का वर्णन है। विद्या पढ़कर भी जो गीता नहीं पढ़ते वे भारत में नहीं रहते हैं। सब नाशवान पदार्थों को क्षर और उस क्षर के अन्दर जो अनाश अपरिवर्त्तनशील है, वह अक्षर है। नाश दो तरह के होते हैं। एक परिवर्त्तन और दूसरा अत्यन्ताभाव। अभी शरीर मौजूद है किन्तु बचपन का शरीर नहीं रहा। जवानी का शरीर फिर बुढ़ापे का शरीर हुआ। शरीर रहा, किन्तु बालपन या युवापन वाला शरीर का रूप नहीं रहा। शरीर को जला दिया गया, जो मिट्टी का अंश था वह मिट्टी में, जो जल का अंश था वह जल में मिल गया। इसी तरह पाँचों तत्त्व पञ्चतत्त्वों में मिल गये। अत्यन्ताभाव नहीं होने पर भी इस परिवर्त्तन को भी नाश कहते हैं। इस स्थूलाकाश में जो कुछ परिवर्त्तित होते-होते समाये रहते हैं, स्थूलाकाश के नाश होने से उनका भी नाश हो जाता है। शरीर का परिवर्त्तनीय नाश होगा, ऐसा ही क्षर का नाश होगा। किन्तु चेतन का ऐसा नाश नहीं होगा, इसीलिये यह अक्षर और निर्गुण है। किन्तु इसका अत्यन्ताभाव होता है। योगी इसका अत्यन्ताभाव कर सकता है। इसके अंदर जो पुरुष है वह पुरुषोत्तम है, निर्गुण-सगुण के परे है। गीता में अपरा और परा दो प्रकृतियों का वर्णन किया है। अपरा प्रकृति को अष्टधा प्रकृति कहा है— पाँच तत्त्व और मन, बुद्धि, अहंकार। महाभारत में लिखा है कि परा प्रकृति अपरिवर्त्तनशील है और निर्गुण है। शान्ति-पर्व, उत्तरार्द्ध मोक्ष धर्म, अध्याय १०४।

कबीर साहब सगुण को सरगुण कहते हैं तो लोग हँसते हैं कि कबीर साहब कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे। हाँ, साहब! कबीर साहब पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु आज उन अनपढ़े की वाणी को पढ़ते हैं तो लोग पढ़ते-पढ़ते सुलझा नहीं सकते। ये घर में ही रहे और औरों को भी घर में रहने की शिक्षा दी। इनके एक प्रसिद्ध शिष्य धर्मदास जी भी घर में ही थे और बड़े विरक्त थे। वे भी पहुँचे थे, ऐसा लोग कहते हैं। उन्होंने अपना सारा धन धर्म-प्रचार में लगा दिया था। इसीलिए कहा है—

"गृही बाम्हि जो रहे उदासी। कह कबीर हम तिनकी दासी॥"

महात्मा गांधी जी कहाँ तक पहुँचे थे सो तो वे जानें। किन्तु उन्होंने बड़ा भारी काम किया। राजनैतिक काम का अपने ऊपर बड़ा भारी बोझ लिया और देश को स्वतंत्र किया। इतने पर भी किसी पद का उन्होंने जरा भी ख्याल नहीं किया और यह सब कुछ उन्होंने गृहस्थ बन कर किया, सन्यासी बन कर नहीं। और यदि लोग कहें कि घर-गृहस्थी में रह कर ईश्वर का भजन ध्यान नहीं होगा तो यह ऐसी बात है जो प्रत्यक्ष उदाहरणों के विरुद्ध है। अतएव मानने लायक नहीं। महात्मा गांधी का सत्संग-पूजा सब चलता रहता था। किन्तु हाँ, किसी काम को हाथ में लेने से वह तुरत ही खतम नहीं हो जाता। उसी तरह इस काम का भी आरम्भ कीजिये कभी न कभी अंत अवश्य होगा।

हाँ, तो एक असीम तत्त्व की स्थिति अवश्य है। दार्शनिक विचार से विचारिये। यदि एक असीम नहीं है, सब ससीम ही ससीम हैं तो सारे ससीमों के पार में क्या है? अनेक ससीम के झुंड को मिलाने से एक असीम नहीं हो सकता। सब ससीमों के पार में एक असीम अवश्य है, ऐसा बुद्धि कबूल करती है। संतों ने असीम तत्त्व को ही परमात्मा कहा है। लोग ईश्वर का खण्डन करते हैं कि ईश्वर यदि है तो उसने ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों किया? मैं कहता हूँ जो असीम है उसकी शक्ति अपरिमित है। हमारी बुद्धि ससीम है। ससीम बुद्धि में असीम परमात्मा के गुणों और कर्मों को पूर्णरूपेण बोध में नहीं ला सकते। इसलिये एक असीम तत्त्व का खंडन नहीं कर सकते। यदि कहो कि उस असीम को ईश्वर क्यों मानें? तो देखो, असीम से बाहर कोई जा नहीं सकता, तब सभी उसके अंदर हैं। जब सभी उसके अंदर हैं तो सभी उसके वश में हुए। जब सभी उसके आधीन हुए तब वह ईश्वर कैसे नहीं हुआ? यदि कहो कि उसकी भक्ति करके क्या लाभ होगा और उसे नहीं प्राप्त करने से क्या हानि होगी?—तो जो हानि होगी, वह तो देख ही रहे हो कि ससीम पदार्थ को पकड़ कर तृप्त होना चाहते हो, किन्तु कभी तृप्त नहीं हो पाते। सदा दुःखी रहते हो। जो पदार्थ आपस में उल्टे-उल्टे हैं तो उसके गुण भी उल्टे-उल्टे होते हैं। यदि ससीम पदार्थ में सुख, शान्ति और तृप्ति नहीं है तो असीम पदार्थ में सुख, शान्ति और तृप्ति होगी। सूरदास जी ने कहा है—

"अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूंगहिं मीठे फल को रस अन्तर्गत ही भावै॥
परम स्वाद सबही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु, निरालम्ब मन चकित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन लीला पद गावै॥

वहाँ आप का कल्याण होगा। वहाँ से फिर दुःख में नहीं लौटोगे। यह ईश्वर की स्थिति है। इसमें विश्वास करना चाहिये।

—(::)—

आप इतिहास को मानवता की, मनुष्य की आत्मा की बढ़ती हुई यात्रा समझ सकते हैं। फिर भी हम यह देख कर ठिठक जाते हैं कि किस तरह इस अग्रगामी यात्रा में व्यवधान होता है और हमें पीछे फेंक दिया जाता है। —नेहरू

\+ + + + + +

विपत्तियों से वे ही विचलित होते हैं, जिनमें स्वार्थ और अहंकार गुप्त रूप से घर किये हुए होते हैं।
—जे० ए० शिंडलर

यत् भूमाय तत् सुखम्

—विश्वम्भरनाथ पांडे

पैगम्बर हज़रत मोहम्मद की एक हदीस है.........

जब ख़ुदा ने ज़मीन बनाई तो वह हिल रही थी और काँप रही थी। तब ख़ुदा ने उस पर अटल पहाड़ पैदा कर दिए और ज़मीन स्थिर हो गई। पहाड़ की ताकत से फ़रिश्ते चकित रह गए और बोले–"ऐ मालिक, क्या तूने पहाड़ से भी अधिक शक्तिशाली कोई चीज पैदा की है?" अल्लाह ने जवाब दिया, "हाँ, लोहा, क्योंकि वह पहाड़ को तोड़ डालता है।" फ़रिश्तों ने पूछा—"क्या तूने लोहे से भी अधिक मजबूत कोई चीज पैदा की है?" खुदा ने कहा, "हाँ, आग, क्योंकि वह लोहे को गला देती है।" फरिश्तों ने फिर पूछा —"ऐ अल्लाह क्या तूने आग से भी शक्तिशाली कोई चीज पैदा की है?" खुदा ने जवाब दिया, "हाँ, पानी, क्योंकि वह आग को भी ठंडा कर देता है।" फरिश्तों ने पूछा—"और पानी से अधिक ताकतवर तूने कौन-सी चीज बनाई?" खुदा ने कहा, "हवा, क्योंकि वह पानी में बहाव पैदा कर देती है।" फरिश्तों ने फिर पूछा, "और क्या तूने हवा से भी अधिक शक्तिशाली कोई चीज गढ़ी है?" खुदा ने जवाब दिया—"हाँ, इन्सान, खास तौर पर उस समय इन्सान हवा से भी अधिक शक्तिशाली होता है, जब वह अपना सुख सारी दुनिया के साथ बाँट कर उपभोग करता है।"

कर्त्ता ने जब सृष्टि की रचना की तो इस गम्भीर घोषणा के साथ कि "एकोहं बहुस्याम्" मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ। 'बहुस्याम्' की प्रक्रिया में लाखों ही वर्ष लगे। हमारे पौराणिक उपाख्यान भी इसी वैज्ञानिक तथ्य को दूसरे शब्दों में दोहराते हैं। वे कहते हैं कि स्वयम्भू मनु से अब तक जितने मन्वन्तर बीते हैं, उनसे लाखों वर्षों का तखमीना बनता है।

मानव जाति की इस अनन्त यात्रा का प्रारम्भिक इतिहास कितने कष्टों और यातनाओं से भरा हुआ, कितना साहसिक, कितना अद्भुत और कितना रोमांचक रहा होगा, इसकी इस समय कल्पना भी कठिन है। पुरुष, स्त्री और बालक की कौटुम्बिक इकाइयों से कैसे समाज की रचना हुई, किस तरह नैतिकता के बुनियादी सिद्धान्त, किसी की हत्या न करो, चोरी न करो, व्यभिचार न करो आदि...विकसित हुए और उनके विकास में किस तरह हजारों वर्ष लगे... मानव के विकास की यह एक अत्यन्त दिलचस्प कहानी है।

शुरू-शुरू में इन्सान का जीवन व्यक्तिगत स्वार्थ की भित्ति पर खड़ा किया गया। धीरे-धीरे उस स्वार्थ की चौहद्दी के भीतर कुटुम्ब, कुल और कबीले आए। पहले इन्सान केवल अपने सुख की ही साधना में रत रहता था। कबीर के शब्दों में उसका दृष्टिकोण केवल अपने 'स्व' तक ही सीमित था...आप मुये पीछे डूब गई दुनिया। धीरे-धीरे कुटुम्ब के सुख में वह अपना सुख समझने लगा। सीमाएँ और विस्तृत हुईं और वह कुल के सुख को अपना सुख समझने लगा। कुलपति कुल के एक-एक व्यक्ति की ओर सचेष्ट रहता था। दायरा और बड़ा हुआ और अब पूरे कबीले के सुख में अपना सुख समझा जाने लगा। कबीले के

एक व्यक्ति का मित्र पूरे कबीले का मित्र और एक व्यक्ति का शत्रु पूरे कबीले का शत्रु समझा जाने लगा। कई-कई कबीले मिले और कौमों का जन्म हुआ। और कौमों ने राष्ट्र की भावना को जन्म दिया। समाज ने एक विस्तृत रूप लिया। सामाजिक आदान-प्रदान का दायरा बढ़ा। पारस्परिक सुख-दुख की भावनाओं ने वृहत् रूप धारण किया।

मानव सम्बन्ध की सीमाएँ हर दिशा में विस्तृत होती गईं। ज्ञान-विज्ञान की नई-नई खोजों ने कुदरत की अगणित नियामतों को जहाँ एक ओर इन्सान के लिए सुलभ बना दिया, वहाँ दूसरी ओर उनकी प्राप्ति और आधिपत्य के लिए मानव-मानव के बीच संघर्ष को भी तीव्र बना दिया। तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से लैस मानव एक खूँखार दरिन्दा बन गया। इतिहास के हर मोड़ पर ऐसा अनुभव होने लगा कि जगन्नियंता की सृष्टि की सर्वोत्तम रचना यह मानव पारस्परिक और मरणान्तक संघर्षों से अपने आपको समाप्त कर लेगा और तब नैतिक विचारधारा का वह सब से दृढ़ ऐक्य बन्धन'''एकोहम् द्वितोयो नास्ति'''लाइलाह इल्लिल्लाह'''का सृजन हुआ। इस तरह हम देखते हैं कि 'एकोहम् बहुस्याम्' से 'एकोहम् द्वितयो नास्ति' तक मानव समाज मानवीय सम्बन्ध के सैकड़ों प्रयोगों के बीच से निकला।

भिन्न-भिन्न देशों, भिन्न-भिन्न कौमों, भिन्न-भिन्न जातियों, भिन्न-भिन्न धर्मों और सम्प्रदायों में विभक्त मानव समूह, तरह-तरह के आचार-विचार वाले, तरह-तरह की भाषा बोलने वाले, सब उसी एक परमात्मा की चौखट पर सर नवा कर, मानव मात्र की एकता का जयघोष करने लगे। तब एक नए सिद्धान्त का जन्म हुआ'''वसुधैव कुटुम्बकम्' सारी वसुधा एक कुटुम्ब है और तब वेदों के स्रष्टा ने सुख की एक नई परिभाषा दी'''यत भूमाय तत सुखम्' जो सुख सारी पृथ्वी के लिए है वही सुख है।

इसके लिए यह आवश्यक था कि इंसान अपने आपको मारे, अपनी खुदी को छोड़े और स्वयं परमेश्वर के हाथ का हथियार बने। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कहते हैं: "जिसका संसार में किसी से वैर नहीं, जो तटस्थ रह कर संसार की निरपेक्ष सेवा करता है, जो कुछ करता है सो सब मुझे अर्पित कर देता है, जो मेरी भक्ति से सराबोर है, क्षमावान, निस्संग, विरक्त, प्रेममय, सबके सुख में अपने सुख को अनुभव करने वाला है'''वही मेरा प्यारा भक्त है"

"मत् कर्म कृन् मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाँडव॥

सारी पृथ्वी का सुख ही वास्तविक सुख है'''इस सिद्धान्त को साकार रूप कैसे मिले, कैसे मानव-जाति इस स्थिति तक पहुँचे? इसके लिए धर्म को साधन बनाया गया। धर्म का कमाल इस बात में समझा गया कि एक ही आत्मा घट-घट के अन्दर व्याप्त है और वही परम आत्मा है, इसीलिए सब का सुख ही आत्म--सुख यानी परम सुख है और सब की सेवा ही परमात्माकी सच्ची उपासना, अल्लाह की वास्तविक एबादत है। इंजील में लिखा है:—"पूरे दिल के साथ ईश्वर से प्रेम करो, अपनी तरह अपने पड़ोसी से प्रेम करो और मानव मात्र के सुख में अपना सुख समझो।"

अब समाज में आध्यात्मिक स्तर पर एक नया संघर्ष यानी आत्म--संघर्ष प्रारम्भ हुआ। यह समस्त सृष्टि दुई पर कायम है। सारी कायनात दो-दो विरोधी वस्तु-तत्वों से बनी है। वजूद या अस्तित्व की

सुई बराबर दोनों तरफ के दो सिरों के बीच चक्कर काटती रहती है। इसीलिए हमें अनेक में एक, कसरत में वहदत की झलक मिलती रहती है। इसी को वेदान्त में "परमतत्व में एकता" और "गुणों और धर्मों में अनेकता" एवं तसव्वुफ में "वहदत दरज़ात" और "कसरत दर सिफ़ात" कहते हैं। वास्तविकता एक है परन्तु उसके गुण अगणित हैं। सर्वव्यापकता को चमकाने के लिए खुदी को मारना जरूरी है। परन्तु प्रकृति ने परस्पर विरोधी तत्वों से सृष्टि बनाई है। दिन-रात, सर्दी-गर्मी, बारिश-धूप, रंज-खुशी, नफरत-प्रेम, देव-असुर, जिन्दगी-मौत, अपना और पराया परस्पर विरोधी तत्व हैं। एक के साथ दूसरे का होना जरूरी है। इसी सिद्धान्त के अनुसार मजहब भी अपने ऊँचे मुकाम से नीचे गिरता है। नैतिक और आध्यात्मिक तत्वों से हटकर रूढ़ियों और कर्मकांड के एक जाल में फस जाता है। गन्दे अन्धविश्वास और जालिमाना रीति-रिवाज उसमें दाखिल हो जाते हैं। लोगों के दिलों को मिलाने के बजाय वह उन्हें फाड़ने लगता है। पृथ्वी पर सुख बढ़ाने, शान्ति कायम करने और एक दूसरे में प्रेम पैदा करने की बजाय वह कत्ले-आम और दूसरों का सुख छीनने पर उतर आता है। मगर तत्व-क्रम फिर बदलता है। हालत पलटती है। आदमी का दिल बदलता है, इन्सान जो स्वार्थ का पुतला बन जाता है, फिर से जन्म लेता है। आदम के गुनाह और प्रायश्चित्त के भवर में दुनिया गोते खाती है।

इसी भँवर में डूबते-उतारते इन्सान आगे बढ़ता है। आध्यात्मिक पहलू से उसने जहान के सुख में इन्सान का सुख ढूँढ़ा, अब वह भौतिक पहलू से इस प्रयोग को सफल करने की कोशिश करता है। राजनीति और अर्थनीति धर्म से ज्यादा बलवान हो जाती हैं। सत्ता और शक्ति की जयमालाओं से कौमें उनकी पूजा करती हैं। दुनिया की सारी संपत्ति और समस्त सुख एक जगह एकत्र होते हैं। गोरी कौमें अपने को इन सुखों का एकमात्र अधिकारी मानती हैं। श्यामल, पीत और गेहुँए रंग की कौमें अपने ऊपर दुःख का पहाड़ लाद कर गोरी कौमों के सुख का सृजन करती हैं। सुख एक जाति विशेष का और धीरे-धीरे एक वर्ग विशेष का एकाधिकार बन जाता है। राजनीति और अर्थनीति के नाम पर इतने भयंकर युद्ध होते हैं कि मजहब के नाम पर हुआ रक्तपात फीका पड़ जाता है। इन लड़ाई-झगड़ों और इन संघर्षों के अन्दर जो घृणा की आग धधक रही है, दोजख की आग शायद उसके मुकाबले में तुच्छ है।

एक पौराणिक उपाख्यान के अनुसार एक महान पापी जब दोखज में पहुँचा तो अपनी कल्पना के अनुसार वह जगह उसे ठंडी दिखाई दी। दोखज के पहरेदारों से उसने पूछा कि मियाँ, दोखज की आग कहाँ जलती है? यहाँ तो सब मामला ठंडा नजर आता है। पहरेदार ने जवाब दिया, दोजख की अपनी कोई आग नहीं है, यहाँ तो हर शख्स अपनी आग अपने साथ लाता है। इन्सान का स्वार्थ, उसकी खुदी, उसकी वासनाएँ ही वह आग है, जिसकी लपटों में इन्सान की आत्मा बराबर जलती रहती है

आज वर्ग-विग्रह और वर्ग-संघर्ष ने पृथ्वी के सारे सुख को नष्ट करके वर्ग-सुख का सृजन किया है। इतनी नफरत और इतनी घृणा उसने पैदा की है कि दुनिया का समस्त सुख और उसका वर्ग-सुख भी उसमें धाँय-धाँय जल रहा है। आज व्याकुल होकर यह वर्ग-आत्मा अणुबमों और उद्‌जन बमों का सृजन कर रह है, ताकि उसका वर्ग-सुख अनन्त काल तक सुरक्षित और उसके एकाधिकार की वस्तु रह सके।

आजकल के इस वर्ग-संघर्ष में एक ओर हद दर्जे की सम्पत्ति और सत्ता का लोभ, दूसरों को नेस्तनाबूद कर देने की तैयारी और भौतिक सुखों की वह चाह है जो कौम-परस्ती या वर्ग-परस्ती का जामा पहने हुए है। वह अपने को जनतंत्रवादी या व्यक्तिवादी कहती है। दूसरी ओर वह साम्यवाद या समाजवाद है जो संसार की सम्पदा में सबके साथ मिल कर बराबर का हिस्सा बँटाना चाहता है। वह सुख की परिधि में सारी दुनिया को समेट लेना चाहता है। इस दृष्टि से समता का यह प्रवाह वास्तव में एक आध्यात्मिक प्रवाह है। लेकिन अभी तक इस प्रवाह को अपने रूप और अपने वेग का ठीक-ठीक पता नहीं है। अभी तक वह अँधेरे में टटोल रहा है, नए-नए प्रयोग कर रहा है और गलतियाँ कर रहा है। अभी तक उसे सच्चे और टिकाऊ समाज-संगठन का भेद नहीं मिला। अभी तक उसे इस बात का ज्ञान नहीं हुआ कि राजनीति की जड़ें अर्थ-नीति में होती हैं और अर्थनीति की जड़ें हमारे सामाजिक सदाचार में। इस सामाजिक सदाचार की जड़ें हमारे आदर्शों और हमारी भावनाओं में हैं और इन सब की जड़ें जीवन के आध्यात्मिक दर्शन में हैं और इस आध्यात्म के अन्दर सब विज्ञान, सब विद्याएँ और समस्त कलाएं समा जाती हैं। उस मूल में जाकर सब सुख ही सुख है, वह अनन्त सुख है, वह अपरिमित सुख है, जहाँ दुख की परिछाईं तक नहीं पड़ती। वहाँ सब का उदय है और वही सर्वोदय है। सुख का खोजी इससे कम में सन्तुष्ट नहीं होता। वह कहता है :—

न त्वहं कामये राज्यम् न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःख-तप्तानाम् प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

अर्थात, अपने लिए मैं न राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग की इच्छा करता हूँ। मोक्ष भी मैं नहीं चाहता। मैं तो यही चाहता हूँ कि दुख से तपे हुए प्राणियों की पीड़ा का नाश हो और सारी पृथ्वी सुख से परिपूर्ण हो।

प्रसिद्ध ईरानी दार्शनिक और सूफी मौलाना रूमी ने लिखा है :

आत्मा के लिए न कोई यहूदी है,
न कोई मुस्लिम,
न कोई तुर्क है, न कोई अरब,
न कोई ईरानी है, न कोई ईसाई,
न कोई नस्ल है, न कोई जात और
न कोई फ़िरका,
आत्मा के लिए बस समझ है, नेकी है
और सब के सुख की भावना है।

आज दुनिया की सबसे बड़ी समस्या यह नहीं है कि आदमी आदमी में भौतिक चीजों का बैठ-बिठाव या बँटवारा कैसे किया जाए, बल्कि सबसे बड़ी समस्या यह है कि मानव मानव की आत्मा में कैसे संतुलन और आत्म-तुष्टि की भावना पैदा की जाए। दुनिया में इस समय इतना ज्ञान-विज्ञान का भंडार है और इतनी शक्ति भी है जिससे सारी पृथ्वी सुख और शान्ति से

परिप्लावित की जा सके; किन्तु अभीतक यह इच्छा इतनी बलवती नहीं हो पाई है और न दुनिया के सामने अभी तक इस दिशा में चलने की भावना ने ही प्रबल रूप पकड़ा है। विज्ञान आजकल आदमी की धन-लोलुपता और शक्ति-लोलुपता का जरखरीद गुलाम बन गया है। वह अब अत्याचारियों के हाथ का एक अस्त्र है। ज्ञान ने प्रेम से अलग होकर दुनिया में नफरत और दुख की एक आग भड़का दी है।

बुराई की यह बाढ़ तभी रुक सकती है जब हम कोई ऐसा ढंग निकालें जिससे दुनिया के सब लोग इस पुराने सुनहले उसूल पर अमल करने लगें कि हर आदमी हर दूसरे आदमी के साथ वैसा ही बर्ताव करे जैसा वह चाहता है कि दूसरे उसके साथ करें। हमें विज्ञान के समस्त आविष्कारों को मनुष्य-जाति के कल्याण और उसके लिये काम में लाने की योजना बनानी है।

संसार के हर समझदार इन्सान को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी है कि जो सुख सारी पृथ्वी के लिये है, वही सुख वास्तविक स्थायी है और इसीलिये वह अनन्त है।

इसके अतिरिक्त जो सुख है, वह सुख नहीं, केवल तृष्णा है। आज उत्पादन की दृष्टि से चारो ओर बाहुल्य और प्रचुरता है, फिर भी न व्यक्ति सुखी है और न समाज। व्यक्ति के सुख में समाज का सुख है। आज जिस सुख को सुख मान कर समाज सुखी हो रहा है, वह वास्तविक सुख नहीं है, सुख का आभासमात्र है, सुख की छायामात्र है।

आज के युग में क्या नहीं है? रेलें हैं, मोटरें हैं, मिलें हैं, कारखाने हैं, प्रचुर मात्रा में अन्न है, वस्त्र हैं, फल हैं, आराम और आसाइश के साधन हैं, साहित्य है, नाटक है, सिनेमा है……क्या नहीं है? यह युग प्रचुर उत्पादन का युग है, चीजों की भरमार का युग है……जी दुखाने का नहीं, आँसू बहाने का नहीं, रोने-चिल्लाने का नहीं। मगर फिर भी क्या इस प्रचुरता में सुख है? आप कहेंगे इसलिये नहीं है कि दुनिया की ८० प्रतिशत जनता सर्वहारा है। किन्तु जो शक्ति, सम्पदा और वैभव में लोटते हैं…क्या वे सुखी हैं, निश्चय ही आप जवाब देंगे, नहीं। इससे एक सिद्धान्त निकला—सुख न अभाव में है और न बाहुल्य में है।

एक दार्शनिक के अनुसार वृक्ष का अपना कोई सुख नहीं होता। जड़ों का गहराई तक जाकर जीवन-रस खींचना, तने का मोटा होना, शाखों का मुलायम होना, पत्तों का हरा-भरा होना, यही वृक्ष का सुख है। ठीक इसी तरह व्यष्टि अथवा समष्टि का अपना कोई सुख नहीं। व्यक्ति और समाज का अपना कोई सुख नहीं। वह समाज सुखी है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति—बालक, तरुण, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सुखी हैं, स्वस्थ हैं, हँसमुख हैं, समझदारी के पुतले हैं और इन्सान की शक्ल में फरिश्ते हैं।

ऐसा सुखी समज गढ़ने के लिये यह आवश्यक नहीं कि हम बाहुल्य और प्रचुरता के बीच से चलें। त्याग और संतोष का रास्ता पकड़ कर भी हम सुख की सीमा तक पहुँच सकते हैं।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के अनुसार तो महान् सुख, सुख का नहीं, दुख का राजा है। जब दुख की आँधी और बिजली की कड़क होती है तब वह अपने जिज्ञासु की छिन्न-भिन्न शयन-सेज पर आ विराजता है। उस वास्तविक सुख के राजा का रास्ता दुख का है, संकट का है, विपत्ति का है। उसके स्वागत में आत्मा कहती है—

> वज्र डाकि शून्य तले विद्युतेरि झिलिक झले
> छिन्न शयन टेने एने आङिनादारे साजा
> झड़ेर साथे हठात् ऐलो दुःख रातेर राजा।

शून्यतल में बादल गरज रहे हैं, बिजली चमक रही है। बिछा दे अपनी खाट। आज हठात् दुख की रात का राजा आँधी-पानी के साथ तुझे अनन्त सुख देने आ पहुँचा है। (:—:)

सफलता के साधन

डा० श्री पांडेय रामावतार शर्मा

हमारे मन में प्रायः तरह-तरह के विचार उत्पन्न होते रहते हैं और वे हमें प्रसन्न ही नहीं क्षुब्ध भी किया करते हैं। मन की एकाग्रता बहुधा उनसे नष्ट हो जाती और शांति अकारण छीन ली जाती है। यह अवस्था चिन्तनीय है और ऐसी दशा में पड़े रहने से किसी के लिये भी सफलता का मुख देखना असम्भव है। सफलता, बहुचिंतता से नहीं, एकाग्रता से प्राप्त होती है। एकाग्र होना अपने मन की दृढ़ इच्छा शक्ति को किसी एक कार्य में केंद्रित करना है, सारे विचारों को एक उद्देश्य में सम्मिलित करना है और बिखरी हुई शक्तियों को प्रबल शक्ति में एकत्र करना है। ऐसा करने ही से एकाग्रता की उत्पत्ति होती है, और विरोध का सामना करने में पूरा बल प्राप्त होता है। एकाग्रता उत्पन्न होने पर संशयों का विनाश हो जाता है और काय की ही चिन्ता मन और शरीर के सामने शेष रह जाती है। ईश्वर का दर्शन भी मनुष्य के लिये एकाग्रता से ही संभव है। भक्त इसी कारण अपना सर्वस्व ईश्वरार्पित कर भक्ति में आत्मविस्मृत हो जाता है और योगी योग द्वारा अपने में परब्रह्म का साक्षात्कार कर परमानन्द का उपभोग करता है। विज्ञान के अद्भुत आविष्कार एकाग्रता के ही सुफल हैं और कर्मवीरों के आदर्श उसी के सजीव प्रमाण हैं। पूर्णता चाहते हुए एकाग्रता का निरादर कदापि नहीं किया जा सकता, क्योंकि एकाग्रता ही पूर्णता की प्राप्ति का योग मार्ग है। दुर्बल से दुर्बल व्यक्ति भी एकाग्रता द्वारा अपनी सभी शक्तियों को एक वस्तु पर केंद्रित कर कुछ न कुछ आशातीत कार्य अवश्य कर सकता है। पहले अपनेपन का बन्दरगाह जान लेना चाहिये, फिर एकाग्रता के अनुकूल वायु को उस दिशा में प्रवाहित कर यात्रा में तल्लीन हो जाना चाहिये। यात्रा सफल होगी। मन, वचन और काया को एक समय ही तथ्य की खोज में लीन करना चाहिये। सभी चेष्टाओं में अनिश्चित-रूप से लग जाने पर भय है कि कोई भी सुन्दर परिणाम न हो। निश्चित है कि डाँवाँडोल मनःस्थिति किसी योजना को सफल नहीं होने देती, वह योजना का भी अपहरण कर लेती है और कीर्त्ति की राह में भयंकर अड़ंगे खड़े कर देती है। इसलिये ऐसी स्थिति में न रहकर निश्चयात्मक विचार से काम लेना चाहिये। निश्चयात्मक बुद्धि निषेधात्मक वृत्ति से रक्षा करती है और निर्माण शक्ति को सहायता पहुँचाती है। मनुष्य की प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं और उनसे मन को निवृत्त रखना कल्याणप्रद है, किन्तु एकाग्रता के अभाव में मन को दुनियावी प्रलोभनों के आकर्षण से निवृत्त रखना कठिन है। मन को दुष्प्रवृत्तियों से खींच कर एक ओर लगाना दुर्भावों पर विजय पाना है। एकाग्रता का सफलता से जो घनिष्ठ संबंध है, उसे हमें समझना और तीर के निशाने पर ही छोड़ना चाहिये।

—(::)—

संसार में जितने दुख हैं सब क्षणस्थाई हैं, क्योंकि वे दूर किये जा सकते हैं। वे हमारी मूर्खता से पैदा होते हैं। जबतक हमें उनकी असलियत नहीं मालूम हो जाती, तभी तक हम उनके हाथों के खिलौने बने रहते हैं।

—जेम्स एलेन

× × × ×

बड़ी से बड़ी बात को सरल से सरल ढंग से कहना उच्च संस्कृति का प्रमाण है।

—एमर्सन

Satyadev
VILL BELABADAR
(PURNEA)

स्थापित १९६१
ग्रा० बिसरा, (पूर्णिया)

आप और आप का स्वास्थ्य

स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के ज्ञान एवं उनके पालन के बिना कोई मनुष्य अपने जीवन में सफल नहीं हो सकता। मनुष्यों के समूह से ही राष्ट्र बनता है। राष्ट्र ही नहीं सम्पूर्ण मानव-समाज का अभ्युत्थान इस बात पर निर्भर करता है कि वे क्या और कैसे खाते हैं?

इसीलिये अब हम नियमित रूप से 'आप और आप का स्वास्थ्य' स्तम्भ के अन्तर्गत जनोपयोगी लेख दिया करेंगे।

—सम्पादक

मांसाहार

मांस को जो समझते हैं कि मनुष्य के भोजन में एक मुख्य वस्तु है, भूल करते हैं। जिन देशों का जलवायु समशीतोष्ण है या उष्ण है वहाँ बहुत-से पुष्टिकारक और अनुकूल भोज्य पदार्थ पाये जाते हैं जो मांस की अपेक्षा अधिक सस्ते और लाभदायक होते हैं।

इन दिनों ऐसे जानवर, जिनका मांस खाने का प्रचार है, कम हैं जिनमें रोग न हो। गाय, बकरी, मुर्गा आदि ऐसे जानवर हैं जो रोगग्रस्त रहते हैं। उनके अन्दर खतरनाक रोगों के कीटाणु पलते रहते हैं। जो ऐसे रोगी जानवरों का मांस खाते हैं उनको भी उनके अन्दर के कीटाणुओं के कारण रोग लग जाने का भयंकर भय रहता है। जानवरों का मांस खाकर कितने असंख्य लोग अकाल में ही काल के गाल में चले गये, इसका कोई हिसाब नहीं मिलता। कई देशों (विशेष कर यूरोप और अमेरिका) में सूअर के मांस को भी अति साधारण भोजन माना जाता है। आप सभी जानते हैं कि सूअर बहुत ही मैला और खाद्य-दृष्टि से घृणित जानवर है। शायद ही कोई अन्य जानवर मलमूत्र को इतने आह्लाद के साथ खाता है। फिर सड़े-गले पदार्थ के बारे में क्या कहा जाय? रहने के लिये भी ये सूअर इतने गंदे स्थानों में आनन्द के साथ निवास करते हैं कि क्या कहा जाय? अति प्राचीन पुस्तकों में भी—जिनमें मनुष्य के पथ्या-पथ्य पर विचार किया गया है—यह लिखा है कि सूअर अति अपवित्र जानवर है और उसका मांसाहार कभी नहीं करना चाहिये। फिर भी मनुष्य उसे खाता है और विज्ञान की दोहाई देकर खाता है। यह तो साधारण बुद्धि की बात है कि जिस जानवर के मांस का उपभोग किया जायगा उसका एक विशिष्ट प्रकार का प्रभाव खाने वाले पर अवश्य पड़ेगा।

बहुत-से लोग भूल से यह विचार करते हैं कि अन्य किसी भी खाने के पदार्थ से मांस में पोषणकारक वस्तु अधिक है, इसलिये मांस खाना चाहिये। अमेरिका के रसायन शास्त्रियों ने अपने रासायनिक प्रयोगों द्वारा यह अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि यह धारणा सर्वथा भ्रान्त है। वे यह बताते हैं कि आधे सेर मूंग-फली (चिनिया बादाम) में इतना पौष्टिक पदार्थ पाया जाता है जो अढ़ाई सेर मांस में नहीं होता। इस से यह भी साफ हो जाता है कि मांस कितना महँगा पड़ता है। उनका कहना है कि फल, अन्न, सूखा मेवा और साग तरकारी का उपभोग करके मनुष्य को खर्च तो बचाना ही चाहिये, साथ-ही साथ, गोश्त खाने के भयंकर परिणामों से भी अपने को बचाना चाहिये।

मांस एसिड बनानेवाला आहार है।

खाने के वस्तुओं का वर्गीकरण अनेक दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। एक दृष्टिकोण यह भी है कि जलाने पर उनका राख किस ढंग का होता है? इस तरह जाँच करने से ज्ञात होता है कि मांस में "एसिड बनाने वाली वस्तुएँ अधिक मात्रा में उत्पन्न होती हैं और अल्कली बनानेवाली वस्तुएं कम होती हैं।" जब मांस खाया जाता है तो देह के अन्दर भी वह ऐसी ही एसिड बनाने वाली वस्तुएं अधिक मात्रा में उत्पन्न करता है। और ये वस्तुएं ऐसी हैं जो अधिक मात्रा में देह में इकट्ठी होने पर, जैसा कि मांस खाने से होता है—तन्दुरुस्ती को बहुत हानि पहुँचाती हैं। साधारणतया यह देखा जाता है कि जिस व्यक्ति को मांस खाने की लत लग जाती है वह बहुधा बहुत मांस खाता है, और इस तरह, वह एसिड बनाने वाला वस्तु अधिक मात्रा में खाकर स्वयं अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ लेता है। अनाज भी एसिड बनाने वाला पदार्थ है मगर वह इतनी हानि नहीं करता जितना मांस। जब मनुष्य शाकाहार करता है तो अनाजों से जितना एसिड बनता है वह उस अल्कली से दब जाता है जो फल, भाजी, तरकारी इत्यादि खाने से बनती है।

मांस जल्दी सड़ने वाला पदार्थ है।

प्रयोग करने से यह निर्णय हुआ है कि मांस ऐसा खाद्य है जिसके कारण आँतों के भाग को सड़ा देने वाले कीड़े और जंतु बड़ी सरलता से उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे कीटाणु स्वास्थ्य को विशेषतः खराब कर देते हैं। शाकाहारी मनुष्य जो वस्तुएँ खाते हैं उनमें ये कीटाणु बहुत कम उत्पन्न होते या बढ़ते हैं। सच तो यह है कि यदि ऐसे हानिकारक कीटाणु आँतों में उत्पन्न भी हो गये हों, तो साग-पात और फल खाने से पनप या बढ़ नहीं पाते। साधारणतया मांस में बहुत-से कीटाणु होते हैं और उनके होने से जब कभी पाकस्थली के भागों में उनके बढ़ने के लिये योग्य परिस्थिति होती है तो सड़ने-गलने का कार्य बहुत शीघ्रता से होने लगता है। अतः यह समझ में आसानी से आता है कि अधिक प्रोटीन वाली खुराक—जिसमें मांस प्रमुख है—हानिकारक कीटाणु उत्पन्न करने और बढ़ाने में बहुत सहायक होती है। इन कीटाणुओं से जो जहरीली चीजें उत्पन्न होती हैं वह देह के नाजुक अवयवों और नसों में घुस जाती हैं और स्वास्थ्य का नाश कर देती हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि मांस में जो प्रोटीन होता है वह यदि देह के बाहर हो तो भी उस में कीटाणु अत्यन्त शीघ्रता से उत्पन्न हो जाते हैं, परन्तु शाक-भाजी और फलों में जो प्रोटीन होता है उसमें कीटाणु उत्पन्न होने की सम्भावना बहुत कम होती है। इसीलिये आँतों में जहर फैल कर मरने वाले मनुष्यों की संख्या मांसाहारी में बहुत देखी गई है, जब कि शाकाहारी ऐसे विष से बहुत कम मरते हैं।

जानवरों में बीमारी का घर होता है।

इस बात का विचार करने से भी यह प्रमाणित होता है कि साग-भाजी और फल खाने की अपेक्षा मांस खाना बुरा है। जानवरों में कई प्रकार की बहुत-सी बीमारियाँ होती हैं जो सरलता से मांसाहारी मनुष्य की देह में उत्पन्न हो जाती हैं। गाय के मांस के सम्बन्ध में तो इस देश में यह बहुधा देखने में आया है कि केवल वही जानवर काटे जाते हैं जो काम करते-करते निकम्मे हो जाते हैं और बोझा ढोने योग्य नहीं रहते। कुछ लोग कहते हैं कि जब मांस उबाला और पकाया जाता है तो उसके अन्दर जो कीटाणु होते हैं वह नष्ट हो जाते हैं। बहुत-सी

उदाहरणों में यह विचार सच नहीं होता, कारण कि बहुत-से रसोइये मांस को खूब अच्छी तरह नहीं पकाते हैं। और यदि यह भी मान लिया जाय कि मांस अच्छी तरह नियम-पूर्वक पकाया जायगा, तो भी मांस के टुकड़ों के बीच का भाग इतना गर्म नहीं हो पाता जितना बाहर का भाग, और इसका परिणाम यह होता है कि कुछ कीटाणु गर्मी के प्रभाव से पूर्णतया नष्ट नहीं हो पाते। और यदि मान लिया जाय कि मांस के अन्दर का भाग भी खूब गर्म करके पका लिया जाय, तोभी ऐसे जानवर का मांस खाना, जिसकी देह में रोग हो, अच्छा नहीं, क्योंकि उस जानवर की नस-नस में वह रोग बिंध जाता है और खाने वाले को अवश्य अपने जहर से हानि पहुँचाता है। उन बीमारियों में से, जो बहुधा जानवरों को होती हैं और जो मनुष्यों में शीघ्र ही घुस जाती हैं, मुख्य बीमारियाँ बारीक-बारीक कीड़े और ट्रिकीना हैं, जो मांस के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर के अपना घर बना लेते हैं।

अधिक प्रोटीन के कारण नाश कर देने वाले रोग लग जाते हैं।

गत थोड़े वर्षों में दीर्घकालिक अथवा घुला देने वाली बीमारियाँ शीघ्रता से बढ़ रहीं हैं। इन रोगों की विशेषता यह होती है कि देह के कुछ भागों या नसों और रगों में नाशकारक परिवर्त्तन होने लगते हैं और, ऐसे भाग मुख्यतः गुर्दे, जिगर, हृदय और दिमाग होते हैं। अधिक प्रोटीन का विशेष नाश करने वाला प्रभाव मुख्यतया अधिक उम्र के मनुष्यों पर होता है।

गुर्दा व हृदय के रोग, नसों का कठोर हो जाना, मिर्गी और इसी प्रकार की अन्य बीमारियाँ बहुधा इसी कारण से होती हैं कि मनुष्य प्रोटीन का उपयोग बहुत ज्यादा करते हैं और यह प्रोटीन मांस से उत्पन्न करते हैं। शाक-भाजी से अगर वही प्रोटीन प्राप्त किया जाय तो इतनी जबर्दस्त हानि नहीं हो। मांस खाने से अन्य हानिकारक प्रभावों का कारण यह भी है कि मांस का जब पचन हो जाता है तो जो अवशेष रह जाता है, वह तुलनात्मक दृष्टि से शाक-भाजी और फलों के अवशेष की अपेक्षा अत्यन्त कम होता है, और इसी कारण से मांसाहार से दस्त साफ नहीं होता, और शाकाहार से थोड़ा-बहुत खुजटा अथवा लकड़ी के बुरादे-सरीखी वस्तु अवशेष रहती है, जिससे आँतें सरलता से साफ हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि शाकाहार के पचने के पश्चात् आँतों के भागों में जो अवशेष रहता है, वह अधिक होता है। इसलिये, पाखाना साफ और सरलता से होता है। अतएव अच्छे स्वास्थ्य की कामना करने वाले सज्जनों को चाहिये कि वे मांसाहार से बचें।

—कविराज श्रीनारायण शर्मा, एल० ए० एल० एफ०
वैद्यशिरोमणि

एक अत्याचारी शासक का प्रभाव उसकी मृत्यु के साथ लुप्त हो जाता है, जब कि एक देश-भक्त का सच्चा चित्र उसकी मृत्यु के पश्चात् ही देखा जाता है। लोग उसकी शिक्षाओं का पालन करते हैं, उसकी प्रशंसा करते हैं और सदैव उसको याद करते हैं।

—सरदार पटेल

वीर और वीरपूजा

—मैलकम मैकडोनाल्ड

अगर आपके आदर्श वीर का चुनाव सही है तो फिर वीर पूजा से आप को महान् बनने की प्रेरणा मिलेगी। मानवमात्र में कमजोरियाँ हैं। महान् से महान् व्यक्तियों में भी कमजोरियाँ होती हैं। किन्तु, उनके चरित्रों में कुछ ऐसे भी गुण रहते हैं जो मानवता के विकास के द्योतक होते हैं। अगर हम उनके जीवन का अध्ययन करें और उनके गुणों को अपने में समाविष्ट करने का प्रयत्न करें तो हमें भी अपने-आप को ऊँचा उठाने का मौका मिलता है।

आज मैं आपके सामने एक ऐसे दिलेर साहसी का जिक्र करूँगा जिसको मैं कभी भूल नहीं सकता और जिसके साहस का मैं इतना कायल हूँ जितना शायद ही किसी अन्य का होऊं। आप उनके बारे में कुछ नहीं जानते होंगे। मुमकिन है कि आपने उनका नाम भी नहीं सुना हो। किन्तु, आज से बीस साल पहले उनका बड़ा नाम था। उनका नाम डाक्टर ब्रुनिंग था और वे एक जर्मन थे। हिटलर के पहले वे ही जर्मनी के चांसलर (प्रधान मंत्री) थे। डाक्टर ब्रुनिंग की सरकार उदार एवं प्रजातांत्रिक थी। प्रतिक्रियावादी नाजी-दल सैन्यबल एवं अधिनायकवाद में विश्वास रखता था। इसलिये वे डा० ब्रुनिंग के तीव्र विरोधी थे और यहाँ तक कि उनको (डा० ब्रुनिंग को) जान ले लेने की धमकी भी देते रहते थे। राजनैतिक दुश्मनों से अपनी जान बचाने के लिये डाक्टर ब्रुनिंग कभी एक स्थान में दो रात के लिये नहीं सोते थे।

उस समय मेरे पिता ब्रिटेन के प्रधान मंत्री थे। हमें पता चला कि डा० ब्रुनिंग हमारे अतिथि बन कर आ रहे हैं। वे और हमारे पिता ऐसी बात-चीत करने वाले थे जिससे जर्मनी का यूरोप के अन्य देशों के साथ चलने वाले झगड़ों का खात्मा होने वाला था और जिससे युद्ध के टल जाने की सम्भावना थी। नाजियों के गुस्से का पारावार नहीं था। वे ब्रुनिंग को धोखेबाज और विश्वासघाती बतला कर यह कहने लगे कि अगर वह बात-चीत के लिये इंगलैंड गये तो लौटते ही उनकी हत्या कर दी जायगी। मगर फिर भी, डा० ब्रुनिंग हमारे यहाँ बात-चीत के लिये आये। उनकी आसन्न हत्या की आशंका से मैं बड़ा विचलित हो गया था। मैं बड़ी सावधानी से उनके चेहरे पर आने-जाने वाले भावों का विश्लेषण करता रहा, ताकि मुझे पता चले कि अपनी हत्या के खतरे से वे कुछ चिंतित हैं या नहीं? उनके मुखमंडल पर एक विद्वान् की नम्रता थी, उनकी वाणी में राजपुरुष की बुद्धिमत्ता थी और उनके व्यवहारों में संतों की-सी विनय थी। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे उनको अपने लिये कोई चिंता ही नहीं थी। पूरी सावधानी से उनके भावों और क्रिया-कलापों का विश्लेषण करने पर भी मुझको उनमें जरा-सी चिन्ता की झलक भी नहीं मिली। उन्होंने आराम के साथ खाना खाया और जबतक वे हमारे बीच रहे, पूरी शान्ति के साथ बात-चीत करते रहे। फिर भी, जिस सुबह को वे विदा होने वाले थे, हमने जर्मनी के अखबारों में यह खबर पढ़ी कि अगले दिन उनकी हत्या होने वाली है।

डा० ब्रुनिंग को हमने विदा किया। अगले दिन मैंने धड़कते दिल से अखबार हाथ में लिया कि शायद कहीं मोटे-मोटे अक्षरों में उनकी मौत की खबर न छपी हो। मगर ऐसी कोई खबर नहीं थी। डा० ब्रुनिंग के बारे में कोई खबर ही नहीं थी। उनके

जर्मनी लौटने की खबर पर बन्दिश लगा दी गयी थी। इसीलिये उनके देश के किसी भी अखबार में उनके जर्मनी लौटने की कोई खबर नहीं थी। दूसरे दिन के अखबारों में बहुत-ही संक्षिप्त रूप में यह घोषणा थी कि वे सकुशल जर्मनी लौट आये। उनके सकुशल होने की खबर से मुझको बड़ी राहत मिली। वे मेरे लिये आदर्श-वीर हो गये थे।

मेरे एक मित्र ने—जो उनको जर्मनी तक पहुँचाने गये थे— उनके जर्मनी वापस लौटने की सच्ची कहानी बतलाई। जिस जहाज से वे जर्मनी लौटे वह जब बन्दरगाह पहुँचा तो एक बहुत बड़ी भीड़ उनके स्वागत को वहाँ जमा थी। आगत विपत्ति की आशंका से उत्तेजित होने पर भी वे सब शान्त थे। जहाज से रेलगाड़ी तक पहुँचने के लिये कुछ पैदल जाना था श्री ब्रुनिंग को। इस खुले स्थान में भीड़ कुछ फैल कर खड़ी हो गयी।

डा० ब्रुनिंग ने हुक्म दिया कि कोई भी व्यक्ति जहाज से रेल तक उनके साथ न जाय। वे अकेले जायगे। उनका अंगरक्षक भी उनके साथ नहीं जायगा। अगर गोली चलने ही वाली है तो वे यह नहीं चाहते कि कोई अन्य निर्दोष व्यक्ति उनके साथ मारा जाय। वे जहाज और रेल के बीच खतरा से भरे खुले स्थान को अकेले पैदल पार करेंगे।

हमारे मित्र जहाज के ऊपर से सभी दृश्य देख रहे थे। उन्होंने जहाज से रेलगाड़ी तक अकेले जाते हुए डा० ब्रुनिंग को देखा। वे बहुत ही शान्ति पूर्वक जा रहे थे। इस बीच में दो दफा उन पर गोली चलाने का प्रयत्न हुआ मगर पुलिस की सतर्कता के कारण वे दोनों प्रयत्न विफल हो गये।

साहस एक महान् एवं उदात्त गुण है। ऐसा साहस जो तमाम विरोध के बावजूद अपनी मान्यताओं में अटल रहे, जान के डर से ठिठक न जाय बल्कि मौत का मुकाबिला कर के उसको तुच्छ सिद्ध करे।

× × × ×

आज तक दुनिया में जितने भी बुद्धिमान हुए हैं उनमें बादशाह सोलोमन का स्थान बड़ा ऊँचा है। उनकी जानकारी हमें बाइबुल से मिलती है।

एक दिन एक बच्चे के बारे में लड़ाई करती हुई दो औरतें उनके पास फैसले के लिये आईं। दोनों का कहना था कि बच्चा उनका है और दोनों बच्चे की माँ होने की हैसियत से बच्चे को लेना चाहती थी। बादशाह ने दोनों के तर्क-वितर्क सुने। यह फैसला करना कठिन हो गया कि आखिर बच्चा दिया जाय तो किसको ?

उन्होंने अपने एक दरबान को बुलाया और उसे तलवार लाने की आज्ञा दी।

नंगी तलवार लाई गई। राजा ने कहा—"बच्चे को दो बराबर टुकड़ों में काट कर एक-एक दोनों को दे दो।"

इस पर पहली औरत बोली—"नहीं सरकार ! ऐसा न किया जाय ! पूरे बच्चे को ही दूसरी औरत को दे दिया जाय। बच्चा तो जिंदा रहेगा।" दूसरी औरत बोली—"नहीं, सरकार ठीक कर रहे हैं। बच्चा न तेरा रहेगा और न मेरा, उसके दो टुकड़े कर दिये जायँ।"

राजा फौरन समझ गये कि बच्चा किसका है। जो सचमुच बच्चे की माँ होगी उसकी तो यही आकांक्षा होगी कि बच्चा किसी तरह जीवित रहे। इसलिये उन्होंने बच्चा पहली औरत को दे दिया।

× × × ×

दुनिया के सभी वीर प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते। कुछ तो इतने अधिक विनम्र और अप्रसिद्ध होते हैं कि हम जब चाहें मिल सकते हैं।

ऐसे ही एक सज्जन से मेरी मुलाकात हुई थी। उनके बारे में मैं आप को बतलाता हूँ। वे उदारता के मूर्त्तिमान रूप थे। वे चीन के निवासी थे और उनका नाम भी विचित्र-सा था। वे पौंग के नाम से पुकारे जाते थे। उनसे मिलने के पहले मैं उनके बारे में इतना ही जानता था कि वे दक्षिण-पूर्व एशिया के सबसे धनी आदमियों में से एक हैं। एक नहीं, कई उद्योगों से और एक नहीं, लिक कई स्थानों से उन्होंने धन प्राप्त किया था। खान, बैंक, जहाज तथा अन्य व्यापारों से भी उन्होंने बेशुमार दौलत हासिल किया था।

उनका नाम सुन कर मेरी कल्पना के सामने जो तस्वीर आई वह कुछ इस तरह से है— राजमहल में रहने वाला, अत्यधिक खर्चीला तथा सुसंस्कृत करोड़पति।

मैं उनसे मिलने गया। उनका मकान बड़ा था और उस मकान का फाटक भी बड़ा शानदार था। जिस हॉल में मुझे ले जाकर बैठाया गया वह भी काफी लम्बा-चौड़ा था। मगर फर्निचर और सजावट की दृष्टि से विचार करने पर वह सूना-सा लगता था। मेरा खयाल हुआ कि शायद नई तरह से हॉल को सजाने के लिये नौकरों ने पुराने फर्नीचरों को कहीं दूसरी जगह हटाकर रख दिया है। एक बूढ़े सज्जन ने मुझे वहाँ रक्खे एकमात्र सोफा पर बैठाया। उस महान् लक्ष्मी-पुत्र से मुलाकात करवाने के पहले मुझको जितनी देर अकेले बैठना पड़ता उस समय को हल्का बनाये रखने के लिये वे मुझसे बात-चीत करने लगे। मगर उनके कपड़े गंदे-बेढंगे से थे। उनके बालों को देखने से ऐसा अंदाज लगता था मानो उनको (उनके बालों को) महीनों से कंघी का दर्शन ही न हुआ है। मैंने उनसे मौसम और सामयिक विषयों पर हल्की-सी बात-चीत की। बात-चीत के दौरान में मेरे मन में रह-रह कर यह सवाल उठता रहता कि आखिर कितनी देर के बाद मुझको उस महान् पुरुष से मिलने को ले जाया जायगा?

फिर मैंने उस नाटे बूढ़े सज्जन से पूछा— "अपने कारोबार के विभिन्न संस्थानों की देख-रेख करते रहने के गुरुतर भार के कारण श्री पौंग को फुर्सत तो नहीं के बराबर मिलती होगी?"

"जी नहीं," उन्होंने जोर देकर आगे कहा–'उनको काफी फुर्सत रहती है। मैं ही श्री पौंग हूँ।'

मैं हक्का-बक्का-सा रह गया। यह आदमी जो गंदे-बेढंगे कपड़े पहने है, जिसके बालों को महीनों से तेल-कंघी सपना है, यह भुक्खड़-सा आदमी जिसको देखने से ही अंदाज मिलता है कि इसकी जेबों में दस रुपये भी नहीं होंगे— उसकी जेबों में करोड़ों-करोड़ थे। हम जी खोल कर हँसे।

फिर उन्होंने बताया कि पैसे जो उनके पास इतने हैं उनका क्या उपयोग वे करते हैं। फिर मैंने उन विभिन्न संस्थानों को अपनी आँखों से देखा जो उनके पैसों से बनाये गये थे और उन्हीं के दिये खर्च से चलाये भी जाते थे। गरीब बच्चों के लिये नर्सरी, स्कूल, बुढ्ढों के लिये आवास एवं भोजन की सुव्यवस्था, महादैत्य के विशाल हाथों की तरह लम्बे फैले अस्पताल तथा अपने पूर्वजों की स्मृति में विशाल मन्दिर। उनके निजी निवास-गृह में आरामदेह फर्निचरों एवं सजावटों की जो कमी थी उसकी क्षति-पूर्त्ति इन

VILL. BELABADOR P.O. PIPARA (PURNEA)

संस्थानों में प्रचुर मात्रा में की गयी थी। फिर भी उनकी आज्ञा यह थी कि कोई इसकी चर्चा न करे कि ये सभी काम उनके पैसों से हो रहे हैं। उनका उसूल था— "नेकी कर, दरिया में डाल।"

उनका दान सर्वथा निःस्वार्थ था। इसीलिये वे सच्चे दानवीर थे। यही कारण था कि वे चिन्तामुक्त आनन्द-मूर्त्ति थे।

× × ×

अन्त में मैं आप से एक ऐसे वीर के सम्बन्ध में बात-चीत करूँगा, जो सम्पूर्ण मानवीय गुणों में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसके प्रतीक थे। वह गुण है प्रेम। साधारणतया उपन्यासों में आप युवक-युवतियों या स्त्री-पुरुषों के बीच होने वाले जिस रोमांटिक प्रेम का वर्णन पाते हैं—मेरा मतलब ऐसे प्रेम से नहीं, बल्कि उस उदात्त, विशाल एवं विस्तृत प्रेम से है जो सम्पूर्ण मानव-संतान को— चाहे वह जिस किसी देश या रंग का हो— कुटुम्ब बना देता है।

बाइबिल में लिखा है– 'अपने दुश्मन से प्रेम करो।' जब पहले-पहल ये शब्द मैंने पढ़े तो मुझको बड़ा विचित्र-सा लगा। मैं सालों तक इसके सही मतलब को नहीं समझ सका। ये शब्द मुझको विरोधाभास से भरे मालूम पड़ते। आखिर मनुष्य अपने दुश्मन से प्रेम करे तो कैसे? मेरा निजी विचार था कि यह सलाह बहुत ही मूर्खतापूर्ण है। भला जो मुझे ही नीचा दिखलाना चाहते हैं, उनको मैं कैसे प्रेम की नजर से देखूँ?

ईसा मसीह के इन शब्दों की गहराई तक उतरने की क्षमता जिस महापुरुष के सान्निध्य से मुझे प्राप्त हुई, वे यहीं (हिन्दुस्तान में) हमारे बीच थे उनका नाम था महात्मा गांधी। उस समय अंगरेजों और हिन्दुस्तानियों के बीच भयंकर विरोध चल रहा था। हिन्दुस्तान में अंगरेजों का शासन था और बहुत-से हिन्दुस्तानी उनको निकाल-भगाना चाहते थे। भारत-स्वातंत्र्य के लिये चलाये जाने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता थे स्वयं महात्मा गांधी। अंगरेजों के विरुद्ध महात्मा गांधी का प्रयत्न अविराम गति एवं अथक परिश्रम के साथ चलता रहता था। किन्तु, अपने अनुयायियों को उन्होंने कभी हिंसा के उपयोग की आज्ञा नहीं दी और न कभी यह इजाजत दी कि वे अंगरेजों से नफरत करें। उन्होंने कहा— ठीक है, अंगरेज हमारे दुश्मन हैं। मगर उनकी स्थिति को भी आप सहानुभूतिपूर्वक समझें, उनपर प्रेम-भाव रक्खें। हमारा प्रेम अवश्य विजयी होगा और वे (अंगरेज) हमारे दोस्त हो जायँगे।

फिर तो जो कुछ हुआ वह आप को मालूम ही है। उसको दुहराने की कोई जरूरत नहीं है। गांधी जी के इस उदाहरण से और अंगरेजों की सहज बुद्धि से, दोनों राष्ट्रों के बीच जो समझौता हुआ और उस समझौते के पीछे जो सद्भावना रही, वह सम्पूर्ण इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अंगरेज खुद यहाँ से चले गये। सम्पूर्ण प्रभुत्वपूर्ण राज्य-सत्ता भारतीयों को मिली। दोनों राष्ट्रों के बीच का भाई-चारा प्रेम की डोरी से बंध कर और अधिक सुदृढ़ एवं प्रगाढ़ हो गया।

मैं गांधी जी को अच्छी तरह जानता था। उनसे मेरी आखिरी जो मुलाकात हुई वह भी मुझको अच्छी तरह याद है। उनके मरने के ठीक दस दिन पहले मैं जनवरी १९४८ ई० में उनसे मिला था। दिल्ली के बिड़ला-भवन की फुलवारी में बैठ कर मेरी उनकी बात-चीत हुई थी। संध्याकालीन धूप से भरे लॉन में

आराम कुर्सी पर बैठ वे बड़ी जिंदादिली से मुझसे बात-चीत करते रहे। उनका वृद्ध शरीर उस जलते अंगारे की तरह था, जिसकी राख झड़ गयी हो और जो कृशकाय होकर और अधिक प्रोज्ज्वल हो गया हो। उस प्रदीप्ति में सदा कायम रहनेवाली ज्योति की झलक थी जो कभी म्लान नहीं होती।

उन्होंने विभिन्न राष्ट्रों के आपसी सम्बन्ध के बारे में बात-चीत करते हुए बहुत दुःख के साथ कहा कि कुछ राष्ट्रों के बीच शक, मतभेद और दुश्मनी है। इनकी वजह से सम्पूर्ण मानवता पर काले और खतरनाक बादल फैले हैं। फिर उन्होंने बतलाया कि कैसे ये खतरनाक बादल उड़ाये जा सकते हैं। इन बादलों से मानवता की रक्षा करनेवाले तत्त्वों में भारत-इंगलैंड की मैत्री (जो हाल ही में और प्रगाढ़ हो गयी है) का स्थान कितना महत्वपूर्ण है, यह भी उन्होंने बताया। फिर उन्होंने बच्चों के-से सरल स्वर में कहा— "मुझे हमेशा यह विश्वास था कि अंगरेज अवश्य ही भारत को स्वतंत्र कर देंगे। —क्योंकि अंगरेजों के दिल-दिमाग में वह कूवत है कि वे बड़े-बड़े और महान् कार्य कर सकते हैं। अब से अंगरेज और हिन्दुस्तानी भाई की तरह रहेंगे।"

दुनिया में अनेकों अन्य प्रसिद्ध योद्धा, शासक, विद्वान्, दार्शनिक, कलाकार और संत हो गये हैं जिनके स्मरण-मात्र से हम लाभान्वित हो सकते हैं। आज भी हमारे बीच अनेकों महान् स्मरणीय पुरुष हैं।

वीरों का यशोगान करने में शरमाने, झेंपने या लजाने की कोई बात नहीं है। वीर पूजा एक ऐसा जरिया है जो अपने-आप को सत्यनिष्ठ बनाने में, सच्चरित्र बनाने में, आध्यात्मिक उन्नति करने में हमारी मदद करता है। कोई गजब नहीं कि उनका अनुसरण हमें भी वीर बना दे!

पर्थ-निर्वाचन

—गुरुदयाल मल्लिक

कहा जाता है कि पूरब और पश्चिम दोनों जगह हमारे युग का यह दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया है और संसार में शान्ति की स्थापना हो गयी है। युद्ध के बाद संधि और सामंजस्य की प्रतिष्ठा के लिये जो सभाएं बैठीं, उनका प्रधान उद्देश्य भावी संघर्षों के विरुद्ध एक तरह का बीमा कराना ही मालूम पड़ा। इन सभाओं ने एक बार यह स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय नीति का रूप देने वाले समर्थ शासक वर्ग के निकट मनुष्य की मानवीयता की अपेक्षा उसके शस्त्रागार का ही महत्व अधिक है। शंकर के 'बम' की अपेक्षा बारूद के 'बम' पर ही उनका ज्यादा भरोसा है। तब इसमें अचरज ही क्या है कि "सीज फायर" की आज्ञा पा लेने पर भी युद्ध की आग का न तो धुआँ ही साफ हुआ है और न चिनगारी ही बुझना चाहती है। विधान रचने वाले पंडितों और प्रतिनिधियों की मनोवृत्ति में जब तक परिवर्त्तन नहीं होता—और यह परिवर्त्तन सदा जागरूक रहनेवाले निर्वाचक-मंडल के हाथों अधिकांशतः समझना चाहिये—तब तक ये सभी बड़ी-बड़ी सभाएँ और संघ केवल बीती तारीखवाली हुँडियों या बीमा की उन पॉलिसियों की तरह होंगी जिनके बैंक और कम्पनियाँ कब की दिवालिया हो चुकी हैं।

ऊपर की बात की सचाई युद्ध-भूमि के भीषण और पिंगल प्रकाश में उस समय बड़ी भयंकरता से प्रमाणित हुई जब कि छपे हुए कागजों के करोड़ों सफे —मनीषियों की चिंताराशि— अस्त्र-निर्माण करने

वाले कारखानों में इसलिये झोंक दिये गये कि हमारे अपने भाइयों का ही खून आसानी से किया जा सके। जिस साहित्य को मनुष्य ने अपने रक्त से लिखा था वही रक्त वसूल करने का साधन बना लिया गया। शब्द-ब्रह्म का ऐसा असम्मान इतिहास में दुर्लभ है। उस ब्रह्म के विनम्र सेवकों की ऐसी निर्मम हत्या भी उससे कम दुर्लभ नहीं। लगभग एक शताब्दी पहले पंजाब में लारेंस ने जनता के प्राणों के साथ खेल खेलते हुए पूछा था— "तुम्हें कलम की हुकूमत प्यारी है या तलवार की ?" लारेंस की आत्मा शायद आज भी संसार की बड़ी-बड़ी ताकतों की इन स्फीतकाय शांति-सभाओं पर मंडराया करती है। कलम और तलवार का द्वंद्व आज भी जीवंत है। कोई पूछे कि साहब, ताकत से भी भला शान्ति की देवी वरदान देती हैं, प्रसन्न होती हैं? जो हमारी प्रेममयी माता हैं, उन्हें भी हम प्रेम से प्रीति न करके रिश्वत से खुश करना चाहते हैं! तो क्या शान्ति की देवी ने भी आज शान्ति का रोजगार शुरू कर दिया है?

सच्ची बात तो यह है कि दुनिया के स्वाधीन राष्ट्रों ने आज भी जीवन का व्याकरण पढ़ते समय उत्तम-पुरुष-सर्वनाम से आगे का पाठ नहीं पढ़ा। स्कूल के विद्यार्थी की तरह "मैं" की व्याख्या करते समय वे आज भी इतना ही जानते हैं कि "मैं"—केवल "मैं" और अकेला "मैं" ही दुनिया में सत्य है। मंसूर की पुकार भी इतने सच्चे "सोऽहं" की क्यों कर रही होगी! किन्तु अगर इन्सान सचमुच ही तरक्की कर रहा है तो उसे अपने जीवन के व्याकरण का ज्ञान बढ़ाना होगा; आगे चलकर उसे समूचे वाक्य की गठन का भेद समझना पड़ेगा। उसे सीखना होगा कि उत्तम-पुरुष-सर्वनाम को वाक्य के अन्य सभी अंशों से अपने कर्त्तव्य का नाता निभाना होता है। उस पर समूचे वाक्य के साथ सामञ्जस्य निर्वाह करने की जिम्मेदारी है। बिना इसके सब कुछ निरर्थक हो जायगा। केवल राष्ट्रों का समूह ही नहीं, यह अखिल विश्व भी छिन्न-भिन्न हो जायगा— यदि इसके संयोजकत्व इस तरह आजाद होकर दशो दिशाओं में छिटकना प्रारम्भ कर दें, पारस्परिक सहयोग और योजना द्वारा शिल्पी के मिली-जुली रंग-रेखा और प्रमाण के जादू को सार्थक न करें, तब विधाता का यह सुन्दर स्वप्न तो मिथ्या हो ही जायगा और यदि यही सृष्टि का उद्देश्य है तब शान्ति की यह उपहासास्पद चेष्टा ही किस लिये?

इतिहास-विधाता ने युग-युग में मनुष्य को ठीक उसी जगह लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से दो पथ दोनों ओर निकल गये हैं, और कहा है, "मनुष्यो, इन में से सही पथ के चुनाव की जिम्मेदारी तुम्हीं पर है। एक ओर मनुष्य के अहंकार का रास्ता है, जिसके किनारे जगह-जगह वे समाधियाँ बनी हैं जिनमें अखिल विश्व की आशा-आकांक्षाओं को दफना दिया गया है। यहाँ दिन-दहाड़े प्रेत घूमते हैं। मनुष्य का दम्भ यहाँ कीड़ों की तरह कब्र के भीतर के आशा-कुसुमों को खाया करता है; हवा स्वार्थ की साँसों से दूषित है, क्योंकि अपनी शुद्धि कोई नहीं करना चाहता। सभी अपनी ही साँसों को सबसे महत्वपूर्ण समझते हैं। यहाँ मनुष्य का मन दर्प और अहंकार से ओतप्रोत है। दूसरी ओर का रास्ता इससे निराला है। यहाँ मनुष्य के मन ने अपनी आत्मा के फू[illegible] की खुशबू बिखराई है— आत्मा, जो एक है, जो [illegible] में समान भाव से परिव्याप्त है। यहाँ अहंकार [illegible]

(शेषांश पृष्ठ २५ पर देखें)

बौद्ध धर्म की 'जेन' शाखा

श्री सुरेन्द्र नाथ साहु, प्राचार्य,
हिन्दी विद्यापीठ, गौहाटी, (आसाम)

'जेन' शब्द की उत्पत्ति 'जेना' (चीनी भाषा के 'चान') शब्द से हुई है। 'चान' शब्द संस्कृत के 'ध्यान' शब्द का चीनी रूपान्तर है जो जापानी भाषा में 'जेना' से 'जेन' बन गया। जो मूल शब्द 'ध्यान' का अर्थ है वही 'जेन' का भी अर्थ है।

बौद्ध धर्म के जेन शाखा के उपदेशों का सार यदि एक वाक्य में कहा जाय तो वह इस प्रकार है— "अपने अन्दर खोज करो तो बुद्धत्व की प्राप्ति होगी।" यह शाखा ध्यानाभ्यास पर अत्यधिक जोर देती है। इस मत के अनुसार बिना ध्यान के निर्वाण की प्राप्ति हो ही नहीं सकती।

बौद्ध धर्म की जेन शाखा के सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादक संत दोगेन थे। दोगेन एक ऐसे बौद्ध भिक्षु थे जिनको प्रारम्भ से ही यह जिज्ञासा हमेशा बनी रहती थी कि "जब प्रत्येक प्राणी के अन्दर बुद्धत्व (निर्वाण) वर्तमान है ही तो फिर बुद्धों को उसकी प्राप्ति के लिये इतना कठिन अभ्यास क्यों करना पड़ता है ?" जापान के किसी भी साधक भिक्षु से उनको कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला तो वे व्यग्र हो उठे और अपनी जिज्ञासा की शान्ति के लिये चीन गये। वहाँ एक जेन भिक्षु के उत्तर से उनको पूरी संतुष्टि प्राप्त हुई। उसी भिक्षु की देख-रेख में आप ने ध्यानाभ्यास के द्वारा निर्वाण की प्राप्ति की और लौटकर अपनी जन्मभूमि जापान पहुँचे। वहाँ उनके प्रचार का सार यह है कि "प्रत्येक प्राणी स्वभावतया बुद्ध है। बुद्ध का ध्यानाभ्यास सर्वथा प्रकृत है—क्योंकि बुद्ध के द्वारा जो कुछ क्रिया होती है वह सब ध्यान है।"

मानव-समाज की उन्नति के लिये बुद्धों का अथक परिश्रम सतत चलता रहता है। मगर मनुष्यों को भी चाहिए कि वे जिस समाज में रहते हों उसके कल्याण के लिये सतत: प्रयास करें।

दिल और दिमाग को संतुलित रखने में ध्यानाभ्यास की शक्ति विलक्षण है। सैनिकों का दिल-दिमाग अवश्य ही संतुलित होना चाहिये, इसलिये जापानी फौजियों के बीच भी इसका प्रचार खूब हुआ। किसानों के बीच तो इसका प्रचार अत्यधिक हुआ और वे नियमित रूप से ध्यानाभ्यास करते थे। भारतवर्ष में जो लोग आँख मूंद कर ध्यानाभ्यास करने को आलसियों का विलास कह कर बदनाम करते हैं उनको इस तथ्य पर निष्पक्ष होकर विचार करना चाहिये। वहाँ की सरकार ने भी इसकी उपयोगिता को समझ कर इसको प्रश्रय दिया।

जापानी संस्कृति के विकास में ध्यानाभ्यास ने काफी सहायता पहुँचायी है। उस समय चीन में ध्यानाभ्यास का खूब प्रचार था। इसलिये ध्यानाभ्यास की शिक्षा के साथ-साथ चीनी संस्कृति भी जापान में आयी। पुष्पों के प्रति जापानियों का प्रगाढ़ प्रेम संत दोगेन (जीवन काल १२०० ई० स० से १२५३ ई० स०) की देन है। ध्यान-योग के साहित्य से परिचय रखनेवाले सज्जनों को अच्छी तरह मालूम है कि फूलों का प्रतीक साधकों को कितना प्यारा है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि जापानी योद्धाओं को वीर बनने की प्रेरणा हमेशा से ध्यानाभ्यास के द्वारा प्राप्त होती रही है।

इन तमाम प्रेरणाओं के मूल में जिस महान् संत

का व्यक्तित्व है उन्होंने (संत दोगेन) ने कभी भी दुनियावी इज्जत या लोक-प्रतिष्ठा का कोई खयाल नहीं किया। दूसरे शब्दों में उनके सम्पूर्ण जीवन को हम कठोर साधना जन्य शक्ति-गंगा को जन-कल्याण में लगा देने वाला महाबांध कह सकते हैं। वे एक महान् संगठनकर्त्ता थे। इस तरह वे दो विरोधी गुणों को एक साथ धारण करनेवाले संत थे। जापानी राष्ट्र की सेवा में उन्होंने सच्चे सेवाव्रती कार्यकर्त्ताओं को खोज-खोज कर उपस्थित किया। उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिये उन्होंने विहारों का निर्माण किया। इन विहारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध 'एइेजी' था। एइेजी नामक स्थान पर बना था, इसीलिये 'एइेजी विहार' कहलाया। वे यहाँ रहकर स्वयं ध्यानाभ्यास करते थे और संघ के भिक्षुओं से करवाते थे। जनसाधारण की सेवा में उनके नियमित सत्संग होते थे। उनके शिष्यों ने उन प्रवचनों का संग्रह करके मानवता की बड़ी सेवा की है। इन प्रवचनों में जो सर्वाधिक प्रसिद्ध है, उसे जापानी भाषा में 'शो-बो-गेन-जो' कहते हैं। 'शो-बो-गेन-जो' का हिन्दी अर्थ हुआ 'सच्चे सिद्धांत का सार तत्व।' उनके प्रवचनों में जो गूढ़ दार्शनिकता है, उससे समस्त शिक्षित संसार चकित है। यह जापान ही नहीं, दुनिया के तमाम शिक्षित संसार के द्वारा प्रशंसित प्रवचन संग्रह है।

(अगर मौका मिला तो उन प्रवचनों का हिंदी अनुवाद शान्ति-सन्देश के पाठकों की सेवा में फिर कभी प्रस्तुत करूंगा।)

—लेखक।

(पृष्ठ २३ का शेषांश)

को निखिल के चरणों तले सौंपता है। अखिल विश्व के देवता के मंदिरों से इस पथ का परिवेश स्निग्ध और सुन्दर है। प्रसन्नता का प्रकाश यहाँ सभी ओर फैला है। यहाँ सभी सभी के लिये निवेदित हैं, समर्पित हैं।"

आज फिर इतिहास-विधाता ने यही प्रश्न मनुष्य से किया है। मजे की बात यह है कि इसमें जोर-जबर्दस्ती का सवाल ही नहीं है। विधाता मनुष्य की मनुष्यता पर अपना विश्वास छोड़ नहीं पाते— उसकी हजार बेवकूफियों से भी निराश नहीं होते। वे मानते हैं कि मनुष्य को स्वाधीन पथ-निर्वाचन का सदा अधिकार है, उसकी निर्णायिका बुद्धि सदा स्वतंत्र है—इसीलिये कि अब वह पशु नहीं रहा, मनुष्य हो गया है।

आज की आजाद ताकतें क्या इस महान् विश्वास की रक्षा करने का प्रयत्न करेंगी? —अथवा यही बताएंगी कि अपनी किसी भूल से कुछ भी नसीहत लेने की उन्हें न तो आदत ही है और न उनमें ऐसी योग्यता ही?

धर्म-रहित धन त्याज्य है। धर्म के बिना राजसत्ता राक्षसी है। अर्थादि से अलग धर्म नाम की कोई चीज नहीं। व्यक्ति या समष्टि सब धर्म से जीते हैं। अधर्म से नष्ट होते हैं। सत्य के सहारे किया हुआ अर्थ-संग्रह यानी व्यापार जनता का पोषण करता है। सत्यासत्य के विचार से रहित व्यापार नाश करता है। झूठ और छल-कपट से होनेवाला लाभ क्षणिक है।

जिसमें व्यवहार नहीं वह धर्म नहीं। राजा जनक के जीवन में यही बात सीखने को मिलती है कि जो धर्म अमल में नहीं लाया जा सके, वह धर्म नहीं, शायद अधर्म है।

—महात्मा गांधी

मनोज-विजय

—श्री महावीर 'संतसेवी'

मनुज के मानस-पट पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'काम' या 'मनोज' है। मन कोई शरीरधारी व्यक्ति विशेष नहीं है। तब फिर इसके पुत्र को शरीरधारी मानना बिल्कुल असंगत ही होगा। शरीर रहित होने के कारण ही इसका दूसरा नाम 'अनङ्ग' भी है। है तो यह अङ्ग रहित, किन्तु अनङ्ग होते हुए भी संसारासक्त जन के लिये "अंग बिना मिलि संग अधिक आनन्द बढ़ावन" इसका प्रमुख कार्य है। ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते 'काम' ने अपना कम नाम नहीं फैलाया। विद्वान्-अविद्वान्, धनी-निर्धन, स्वदेशी-विदेशी आदि सभी के घरों में इसने अपना घर बना लिया। मनोज ने अपनी प्रभुता को मानव तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि सभी थलचर, जलचर और नभचर तक निज प्रभुत्व से अपना साम्राज्य विस्तृत कर लिया। इहलौकिक समस्त चर प्राणियों पर आधिपत्य जमा लेने पर जब उसे सन्तोष नहीं हुआ तब उसने देवलोक की ओर अपना कदम बढ़ाया। सुचतुर 'मनोज', देवलोक जाने के पूर्व ही सोच लिया था कि—

"एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवे मूल को, फूले फले अघाय॥"

इसलिये उन्होंने सवप्रथम देवराज इन्द्र पर ही धावा बोल दिया। मनोज की विपुल सेना के आगे इन्द्र की एक भी कला न चली और विवश होकर उन्होंने 'मनोज' की शरण स्वीकृत कर ली कामाधीन इन्द्र नर-लोक में आ गौतम-गृह में प्रविष्ट हुए और पुरस्कार स्वरूप उन्होंने उस पदार्थ को प्राप्त किया जिसे छुपाकर रखने में उन्हें स्वयं वर्षों छिपकर रहना पड़ा।

तत्पश्चात् "जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई" को चरितार्थ करता हुआ 'मनोज' ने एक-एक करके क्रमशः ब्रह्मलोक तथा शिवलोक प्रभृति लोकों एवं लोकपतियों पर हँसते-खेलते स्व-शासन स्थापित कर लिया। इस प्रकार विजयी 'मनोज' त्रिभुवन-पति बन बैठा। यह बिल्कुल सत्य है कि जो चीज जितनी कड़ी होती है, टूटने पर उसके उतने ही अधिक टुकड़े होते हैं। ठीक इसी भाँति मानव शक्ति से बढ़े-चढ़े एवं कड़े बलशाली देवराज एव देवों की शक्ति को 'मनोज' ने चूर-चूर कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला और उनको कामोन्मुख कर उनकी विलासिता एवं विषय-भोग-शक्ति को अत्यधिक उभाड़ दिया। इसीलिये गो० तुलसी दास दास जी ऐसे भक्त को भी कहना पड़ा—

"इन्द्रिय सुरन्ह न ज्ञान सुहाई,
विषय-भोग पर प्रीति सदाई।"

पुरुष वर्ग पर आधिपत्य जमा लेने के पश्चात् 'काम' स्त्री वर्ग की ओर बढ़ा और अपनी प्रभुता से उन्हें विशेष प्रभावित कर 'कामिनी' की उपाधि से विभूषित किया। साथ ही उसने अपना डेरा भी वहीं डाल दिया। अथवा यदि यों कहा जाय कि स्त्री-शरीरस्थ 'काम' ने अपने को 'नारि विश्व माया प्रकट' के रूप में रूपान्तरित कर लिया, तो शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी। देवगण 'मनोज' की शरण स्वीकृत कर ही चुके थे, अब माया से भी विशेष मोहित हो उसके जाल में मृगा की नाईं फँसने लगे। काम की इस मायिक लीला को देखकर स्पष्टवादी संत कबीर साहब से रहा न गया और उन्होंने स्पष्ट कहा—

"माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी॥

केशव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी ।
पण्डा के मूरत ह्वै बैठी, तीरथ में भई पानी ॥
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी ।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू की कौड़ी कानी ॥
भक्त के भक्तिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो, यह सब अकथ कहानी ॥"

मनोज की इस भाँति त्रिभुवन-प्रभुता बढ़ जाने पर भी नरलोक में कुछ ऐसे भी लोग थे, जिन्होंने इसकी आधीनता स्वीकार नहीं की और ये बागी हो गये। दुर्जय 'मनोज' ने उन लोगों पर भी चढ़ाई की और कल, बल तथा छल करके नारद, शृङ्गी तथा विश्वामित्र सरीखे बागियों को अपने पंजे में करके शान्तनु-पुत्र देवव्रत से लड़ाई आरम्भ कर दी। घनघोर संग्राम के बाद देवव्रत विजयी हुआ। इस भीषण संग्राम में विजयी होने के कारण, तब से देवव्रत का नाम भीष्म पड़ा। यद्यपि 'काम' देवव्रत से पराजित होने के कारण दुःखित तथा लज्जित था, फिर भी वह पूर्व प्राप्त ऐश्वर्य से मदान्ध भी था। वह कहने लगा– "निर्ममता और योगाभ्यास के बिना किसी भी उपाय से मुझको कोई जीव मार नहीं सकता। जो पण्डित मनुष्य आत्मा को न जानकर, मोक्ष मार्ग में नियत होकर मुझे मारने का उपाय करता है, उस मोक्ष में प्रवृत्त चित्त को देखकर नाचता हूँ और हँसता हूँ। मैं अकेला सनातन सब जीव-मात्रों से अवध्य हूँ।" [महाभारत, अश्वमेध पर्व, अ० १३]।

इस प्रकार कहकर 'मनोज' ने उन महान् आत्माओं पर, जिनका अंतःकरण स्फटिक के समान स्वच्छ एवं निर्मल था तथा जो अविचल भाव से अचल आत्मा में अवस्थित थे, आक्रमण किया। किन्तु

"बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के वचन सन्त सह जैसे ॥"

तथा—

"ऊसर बरसइ तृन नहिं जामा ।
जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ॥"

की भाँति श्री शुकदेव जी, श्री गोरखनाथ जी तथा श्री तुलसी साहब जो प्रभृति सरीखे आत्मज्ञानी सन्तों के समक्ष 'काम' की एक भी कला न चली। इन महान् आत्माओं के दुर्ग के भीतर प्रविष्ट करना तो दूर रहा, उनके फाटकों के समीप भी वह फटकने नहीं पाये। उनके द्वारपाल शम, दम और नियम-यम दृढ़ता पूर्वक पहरा दे रहे थे तथा उनके गढ़ों के अन्दर आत्म-साक्षात्कार रूपी महा प्रलय की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। प्रदीप में पतङ्ग की भाँति उन महान् आत्माओं के ब्रह्म तेज में जलकर वह भस्मीभूत हो गया।

अतएव यदि आप भी दुष्ट काम का दमन और शमन करना चाहते हैं तो शम-दम का साधन, यम-नियम का पालन और संसार में अनासक्त रह, योगाभ्यास द्वारा अपने अन्दर की ब्रह्म-ज्योति को जगाइये।

श्री मद्भगवद्गीता में लिखा है—

"विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥" ५९ ॥
गीता अ० २ ॥

अर्थात् यदि कोई भोजन छोड़े और उपवासी होकर रहे तो विषयों की ओर से उनकी इन्द्रियों की गति मन्द पड़ती है, परन्तु विषय-रस की स्मृति और उसकी इच्छा नहीं छूटती है। ये तो परब्रह्म परमात्मा के ही दर्शन से छूटती हैं।

..."एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥" ४३ ॥
गीता अ० ३ ॥

"'इस तरह बुद्धि से परे आत्मा को पहचान कर और आत्मा द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो! काम रूप दुर्जय शत्रु का संहार कर।

उपर्युक्त श्लोक पर महात्मा गांधी जी की टिप्पणी इस भाँति है— "यदि मनुष्य शरीरस्थ आत्मा को जान ले तो मन उसके वश में रहेगा, इन्द्रियों के वश में नहीं रहेगा और मन को जीता जाय तो काम क्या कर सकता है?

मन और मनोज पर विजय प्राप्त करने के लिये मुक्तिकोपनिषद् में लिखा है—

"एक तत्त्व दृढ़ाभ्यासाद्यावन्न विजितं मनः।
प्रक्षीण चित्त दर्पस्य निगृहीतेन्द्रियद्विषः।
पद्मिन्य इव हेमन्ते क्षीयन्ते भोग वासना॥"

अर्थात्, जबतक मन नहीं जीता गया हो, एक तत्व के दृढ़ अभ्यास से चित्त अहंकार को पूर्णरूप से नष्ट करके इन्द्रिय शत्रु को निग्रह करना। ऐसा होने से ही हेमन्त काल के कमल सदृश भोग वासना का नाश हो जायगा।

एक बात और, जो अत्यन्त प्राचीन एवं बिल्कुल सत्य कहावत है, इसे भी जरा स्मरण रखिये— 'जैसा खाय अन्न, वैसा होय मन।' संत कबीर साहब ने भी कहा है—

"जैसा अन-जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी वानी होय॥

आहार का प्रभाव मन पर पड़ता है। इसलिये अच्छे-बुरे भोजन के परिणामस्वरूप मन भी अच्छा-बुरा बनता है। मन से विचार उत्पन्न होते हैं, इसीलिये अच्छे-बुरे मन के अनुकूल ही अच्छे-बुरे विचार उद्भूत होते हैं। फिर विचारानुकूल ही व्यवहार होते हैं। इसलिये अच्छे-बुरे विचार के कारण ही व्यवहार भी अच्छे-बुरे—शुभ-अशुभ होते हैं। रजोगुणी और तमोगुणी भोजन से मनमें चंचलता और मूढ़ता उत्पन्न होती है, जिससे काम-क्रोधादिक विकार उभड़ते हैं। और सतोगुणी भोजन से मन शांत, शुद्ध और सात्विक रहता है; इससे पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं।

अतएव मनोज (काम) विजय की अभीप्सा रखनेवाले के लिये संयमित आहार-विहार का पूर्ण ध्यान रखना अत्यन्त अपेक्षित है। भोजन सदा सात्विक और हल्का होना चाहिये। कभी भी, खास कर रात्रि के समय में भूलकर, भी गरिष्ट भोजन नहीं करना चाहिये। उत्तेजक, बासी, अधिक मिर्च-मशालेदार, गर्म, खटाई और चरपरे भोजन से सदा बचते रहना चाहिये। अधिक बार और अधिक मात्रा में भोजन करना या अधिक उपवास करना, अधिक जगना ता अधिक सोना; ये सभी हानिकारक हैं। इनके व्यवहार करनेवाले से ब्रह्मचर्य की रक्षा, असंयमी जन के लिये 'काम दहन, मन वश करन' कठिन ही नहीं बल्कि पूर्णतया असम्भव है। ठीक ही कहा है कि—

"वास पात जो खात है, ताहि सतावै काम।
नित-प्रति हलुआ खाय जो, ताकी जानै राम॥"

किन्तु जो इन्द्रियों का संयम करता है, आहार-विहार का परिमाण जानकर मितभोगी बनता है, सत्पुरुषों का संग करता है तथा अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा अनमोल रत्न के समान करता है, उसी आचरण समन्वित वीर्यवान् के अन्दर योगाभ्यास साधन से ब्रह्म-ज्योति जगेगी और वही वीर साधक मन और मनोज पर विजय प्राप्त कर सकेगा।

(पृष्ठ २ का शेषांश)

निर्भर करती है कि वह (भारत) कितनी गहराई से इन सिद्धान्तों को मानता है और उन पर अमल करता है। क्योंकि ऊपरी मान्यता से कुछ होता-जाता नहीं; होना-जाना तो उसूल को अमल में लाने पर निर्भर करता है। हिन्दुस्तान में करनी और कथनी में जमीन आसमान का फर्क है। इस देश में इस रोग की जो भीषणता और व्यापकता दिखाई पड़ती है वह अन्य किसी भी देश में नहीं।

हम कहते हैं—" स ओतः पोतश्च विभुः प्रजासु।" (यजु० ३२।८) अर्थात्, वह मूल तत्व सारे विश्व में ओत-प्रोत है और यह सृष्टि उसी से उत्पन्न हुई है; "ईशावास्यमिदं सर्वंजत्किञ्च जगत्यां जगत्" (यजु० ४०।१) अर्थात्, सारे विश्व में अन्तर्यामीभगवान् व्याप्त हैं, "यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति। सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते (यजु० ४०।६) अर्थात्, जो सब में अपने को और अपने में सब को देखता है वह किसी से नफरत नहीं करता। फिर भी, हम समूची सृष्टि से नफरत करते हैं और केवल अपने "मैं" से प्रेम, हम सारे विश्व में अन्तर्यामी को व्याप्त क्या देखेंगे जब अपने में ही उसको नहीं देख पाते। सबको हम अपने में क्या देखेंगे जब हम अपने हरिजन भाइयों से इतना नफरत करते हैं कि खुद नफरत को हमारी इस बेजा हरकत से नफरत आती है। क्योंकि ऐसा करके हम, रविन्द्रनाथ के शब्दों में, (करेछ भेतरेर ठाकुरेर अपमान) उनके अन्दर के ईश्वर का अपमान करते हैं। बात यह है कि हम कहते हैं कुछ और,करते कुछ और हैं। (यहां ध्यान देने की बात यह है कि बिना अपने अन्दर देखे बाहर नहीं देखा जा सकता। यह एक अलग विषय है। इस पर अगर कोई संत-साहित्य प्रेमी खोज करेंतो बड़ा अच्छा हो।) बात यह है कि हम कथनी और करनी का इतना बड़ा अन्तर शायद ही अन्य किसी देश में देखने को मिलेगा।

आज सारी दुनिया को यही बीमारी लग गयी है।

कहते हैं हम शान्ति चाहते हैं। और तैयार करते हैं महानाशकारी अणु और उद्जन बम। इस कथनी और करनी के फर्क के कीटाणुओं को सारी दुनिया में फैलाने की जिम्मेदारी किस पर है?

हम कहते हैं इसकी सबसे पहली जिम्मेदारी भारत पर है। कथनी और करनी में अगर फर्क होगा तो कोई किसी पर विश्वास नहीं कर पायगा। बिना विश्वास के आचरण शुद्ध नहीं हो सकता। यह मानी हुई बात है।

इस बात को दुनिया के विद्वान् मानने लगे हैं। बाह्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मनुष्य ने यह सम्भव बना दिया है कि दुनिया के लोग घर बैठे एक दूसरे से बातचीत कर सकते हैं, एक दूसरे की बात सुन सकते हैं, समझ सकते हैं और जरूरत में मदद कर सकते हैं। मगर इसका रास्ता कौन दिखायगा, कौन आगे बढ़ कर काम करेगा? वह जो खुद 'दम्भाचार' के मैलेरिया से पीड़ित हो?

मैलेरिया से लड़ने के लिये पहले उस स्थान के मच्छड़ों को समूल नष्ट कर दिया जाता है जहां वे होते हैं और ऐसा इन्तजाम किया जाता है कि वे पैदा ही न हों।

इसलिये झूठ के अड्डों से दम्भाचारियों का जमघट तोड़ना होगा। इस कार्य का नेतृत्व हमेशा ऐसे ही आदमियों ने किया है जो कथनी और करनी को एक कर के सत्य के शोध में जीवन व्यतीत करते हैं। जमाना इन्हीं को सन्त कहता है।

इसलिये आज उनके नेतृत्व को मानना ही पड़ेगा। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि संत-साहित्य के इस पक्ष की उपादेयता को न तो हम भारतवासी और न दुनिया के लोग ही समझ सके हैं।

आज संत-साहित्य के अध्ययन—मनन और तत्सम्बन्धी खोज द्वारा शोधित सत्य पर आधारित आचार ही विश्व को बचा सकता है। उससे भी ज्यादा दुःख की बात है कि दुनिया आज भी इसकी आवश्यकता को नहीं समझ पाई है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में प्रकाशन के जो प्रबन्ध हुए हैं उसमें नाना प्रकार का साहित्य है मगर विश्व-संत-

साहित्य एवं विश्व के संतों के उपदेशों, रचनाओं, उनकी जीवनियों आदि विषयों पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है।

हम चाहते हैं कि भारत पहले खुद इस लायक बने कि अपने अन्दर की कथनी और करनी के भेद को मिटा सके।

हमारी और आप की नैतिक जिम्मेवारी है कि हम आप इस पुनीत कार्य की ओर ध्यान दें।

ध्यान पूर्वक विचार करने से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि आज के राजनीतिक नेताओं से शान्ति-स्थापना का कार्य नहीं हो सकता। उनसे हमें ऐसी आशा करनी भी नहीं चाहिए। गालिब के शब्दों में—

हमको उन से वफा की है उम्मेद,
जो नहीं जानते वफा क्या है?

राजनीति को वफा से क्या मतलब? स्वयं डिजरैली साहब कहते हैं कि राजनीति से बड़ा कोई दूसरा जूआ नहीं है। (There is no gambling like politics.) डिजरैली साहब इंगलैंड के बहुत ही प्रसिद्ध और प्रतिभाशाली पुत्र हैं। वे एक महान वक्ता थे। विख्यात साहित्यिक और उपन्यासकार की हैसियत से भी उनका दर्जा बहुत ही ऊंचा है। ये राजनीतिज्ञ भी बहुत बड़े थे। राजनीतिक सफलता की चरमसीमा तक आपकी पहुँच थी। आपके प्रधान मंत्रित्व में इंगलैंड ने स्वेज नहर पर आधिपत्य प्राप्त किया और रानी विक्टोरिया भारत की महारानी बनी। ऐसा महापुरुष अगर राजनीति को जूआ कहे तो फिर विचार करने को मजबूर होना पड़ता है। उनके राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वी ग्लैडस्टन साहब थे। दोनों में होड़ चलती थी। जब डिजरैली साहब प्रधान मंत्री बन जाते थे तो ग्लैडस्टन विरोधी दल का नेतृत्व करते थे और इसके विपरीत, अगर ग्लैडस्टन साहब प्रधान मंत्री बन जाते थे तो डिजरैली साहब विरोधी दल का नेतृत्व करते थे। स्वयं ग्लैडस्टन कहते हैं—" राजनीति का प्रभाव हमारे जीवन पर, राष्ट्र के नैतिक जीवन पर, कितना कम पड़ता है! उससे कहीं ज्यादा प्रभाव तो केवल एक अच्छी किताब का पड़ता है। (How little do politics affect life, the moral life of a nation! One single good book influences the people a vast deal more.)

विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि शान्ति तभी कायम होगी जब राजसत्ता के प्रयोग का आधार बदल दिया जाय।

शान्ति देवी का वरदान प्राप्त करने के लिए आज की राक्षसी माया से मानवता को मुक्त करना होगा।

जब तक शान्ति बाहर से प्राप्त करने की आशा बंधी रहेगी तब तक चिरस्थाई शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती।

जिसने आन्तरिक शान्ति प्राप्त करली है वही शान्ति की प्राप्ति का मार्ग बतला सकता है।

हजारों लोग मेरी पूजा करते हैं तब मुझे घबराहट सी होती है। पूजा में मुझे मिठास मालूम हुई हो अथवा उससे मैं उस पूजा के योग्य हूं, ऐसा मुझे मालूम हुआ हो, ऐसा कभी न हुआ। किन्तु मेरी अयोग्यता की जानकारी मुझे रही है। मुझे याद नहीं आता कि कभी सम्मान की भूख मुझे लगी हो, किन्तु काम की भूख अवश्य है। सम्मान देने वालों से काम लेने के लिये मैं फड़फड़ाया हूं और जिन्होंने काम नहीं दिया उनके सम्मान से दूर भागा हूं। मुझे जहां पहुंचना है, वहां जब मैं पहुंचूंगा तभी कृतार्थ होऊंगा। लेकिन ऐसा दिन कहां जब मियां के पांव में जूती होगी।

—महात्मा गांधी

२८-८-३२, यरवदा मन्दिर]

रूस में हिन्दू मन्दिर

--एद विन ग्रान्तोव्स्की

सौ वर्ष से अधिक हुए, सन् १८४७ की वसंत में ट्रांस-काकेशस के एक सबसे बड़े नगर तिफलिस (जो अब जार्जिया की राजधानी तिब्लिसी है) में एक अत्यंत असाधारण अंत्येष्टिक्रिया देखी गयी। नगर में जब एक ब्राह्मण यात्री की मृत्यु हुई तो उसकी अंतिम आज्ञा के अनुसार उसकी अंत्येष्टि-क्रिया हिन्दू रीति से सम्पन्न की गयी। इस विषय पर टिप्पणी करते हुए, तिफलिस के 'काकेशस' नामक समाचारपत्र ने लिखा था— "हिन्दू रीति के अनुसार ब्राह्मण का दाह संस्कार किया गया और उसकी राख को कूरा नदी में प्रवाहित कर दिया गया, ताकि यह नदी जो कैस्पियन सागर में गिरती है, उसे अनन्त ज्योति के तट तक पहुँचा दे…"

कैस्पियन सागर के तट पर वह कौन-सी अनन्त ज्योति थी जो ब्राह्मण के मित्रों के मन में थी?

सुराखानी की ज्वाला

आज किसी भी स्कूली छात्र से पूछिये कि सोवियत आजेरबैजान की राजधानी बाकू नगर के निकट, आप्शेरोन प्रायद्वीप किस चीज के लिये प्रसिद्ध है; वह बेझिझक उत्तर देगा—'तेल के लिये।' निश्चय ही यह जिला 'काले सोने' की दृष्टि से धनी है। किन्तु तेल की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं, सौ साल से अधिक नहीं; जब कि आप्शेरोन की ख्याति उससे बहुत पुरानी है। छोटे-से आधुनिक नगर सुराखानी से थोड़ी ही दूरी पर, अति प्राचीन काल से पृथ्वी से ज्वालाएँ निकलती रही हैं। इसका कारण उन रंगहीन गैसों का जलना था जो ऐसी जगहों पर अक्सर पायी जाती है जहाँ तेल होता है। मानव समाज की पहली शताब्दी में ही, जरथुस्त्र के अनुयायी—प्राचीन ईरान के एक बहुत व्यापक धर्म के माननेवाले, इन विशिष्ट अग्नियों की पूजा किया करते थे। जैसे-जैसे शताब्दियाँ बीतती गयीं, वैसे-वैसे जरथुस्त्रवाद का स्थान इस्लाम लेता गया और अग्नि-पूजकों के केवल छोटे-छोटे गुट शेष रह गये। ये लोग पारसी थे, जो भाग कर हिन्दुस्तान चले गये थे और कुछ हजार 'हीब्रू' थे जो फारस में ही रह गये थे। लेकिन सुराखानी की लपटों की ख्याति पहले जैसी ही कायम रही। अरब विद्वान् मसूदी ने उनके विषय में दसवीं शताब्दी में लिखा था और बारहवीं सदी से जितने यात्री आजेरबैजान आये हैं, लगभग सभी ने न केवल अमर ज्योति की चर्चा की है बल्कि अग्नि-पूजकों के एक ऐसे मंदिर के बारे में भी लिखा है जो उसके निकट ही बना दिया गया था। तुर्किस्तान के चेनेबी, जर्मनी के काम्प्फेर, अंगरेज हैनवे और रूसी गोलित्सिन, सभी ने सुराखानी के मन्दिर को पारसियों और हीब्रू लोगों का तीर्थस्थान माना था। रूस के प्राच्य-विद्या विशारद बेरेजिन का भी यही मत था, जिन्हें रूस की विज्ञान-अकादेमी ने मंदिर का अध्ययन करने के लिये बाकू भेजा था।

बेरेजिन का मिशन

नगर के अपेक्षाकृत पुराने निवासियों ने बेरेजिन को यह राय दी कि संध्या गहरी हो जाने के बाद वह मंदिर देखने के लिये जायँ। उन्होंने बताया, "उस समय वह कहीं अधिक सुन्दर लगता है।" तदनुसार,

रूसी विद्वान् गोधूली के समय बाकू से रवाना हुआ और बाद को उसने अपने अनुभवों को निम्नप्रकार से अंकित किया— "हम ज्यों-ज्यों निकट पहुँचते गये, वह प्रकाश त्यों-त्यों तेज होता गया, और जब हम एक पहाड़ी पर चढ़ गये तब वह पूरी तरह दिखाई देने लगा। पहले हम अग्नि की केवल मुख्य शिराओं को ही देख पाते थे, और पृथ्वी से उछलती हुई अन्य लपटों को हम केवल उस समय देख सके जब हम उसके काफी निकट पहुँच गये···। हवा के झोंके आग की उन रंग-बिरंगी पंक्तियों को झकोर कर विभिन्न प्रकार की आकृतियों में बदल देते थे। चकाचौंध करनेवाले प्रकाश में हम उस भवन के आकार-प्रकार को, जिसमें हिन्दू लोग रहते थे, और विशेष रूप से बनायी गयी चिमनियों से पताकाओं की तरह लहराती हुई लपटों को मुश्किल से देख पाये।"

मंदिर के पुजारियों ने बेरेजिन का आतिथ्यपूर्ण स्वागत किया और दूसरे दिन वह पुजारियों तथा तीर्थ-यात्रियों से बातचीत और भवन की गहरी जाँच-पड़ताल कर सके। मंदिर और उसके चारो ओर बनी हुई दूसरी इमारतें आज भी उसी तरह सुरक्षित हैं जैसी वे उस समय थीं। मंदिर भूरे रंग के पत्थर से बना हुआ एक चौकोर भवन है। चारो दीवारों में चार ऊँची-ऊची मेहरावें बनी हुई हैं। मंदिर के बीचोबीच एक बलि-बेदी बनी हुई है और छत के ऊपर एक गोलाकार घंटाघर है। समूचा भवन एक दीवार से घिरा हुआ है जिसके भीतरी भाग में इमारतें खड़ी हैं, जिनमें पुजारियों और तीर्थ-यात्रियों के वास्ते २४ कमरे बने हुए हैं। भवन की सरल एवं अलंकार-विहीन स्थापत्य-शैली उस बस्तु की सुन्दरता को और कोनों पर बनी पत्थर की चिमनियों से निकलने वाली लपटों के रुक्ष सौंदर्य को बढ़ा देती थी जिसके लिये तीर्थयात्री वहाँ आते थे।

बेरेजिन के अनुभव रोचक सिद्ध हुए और मंदिर के निवासियों के साथ उनके पहले परिचय से ऐसी सामग्री प्राप्त हुई जिसने सचमुच सनसनी पैदा कर दी।

वे पारसी न थे

मंदिर के सभी निवासी और यात्री भारतीय थे। उनमें से कई यह भी बता सकते थे कि वे हिन्दुस्तान के किस भाग में पैदा हुए थे। उस सभी ने बताया कि पारसियों से उनका तनिक भी सम्बन्ध न था। वे तपस्वियों का जीवन व्यतीत करते थे। वे सभी बहुत हल्का भोजन करते थे।

एक कोठरी की दीवार पर बहुभुजा काली का हरे रंग का चित्र बना हुआ था, जिसकी बेरेजिन ने प्रतिलिपि तैयार की। विद्वान् का ध्यान अंत्येष्टि-क्रिया की विधि की ओर गया। मृतकों को पवित्र अग्नि में जलाया जाता था। इस उद्देश्य से, मंदिर के निकट एक गर्त के ऊपर, जिसमें गैस का बाहुल्य था, पत्थर की हक भट्ठी बनायी गयी थी। मृतक के शरीर पर गाय के घी का लेप कर दिया जाता था, और फिर उसे भट्ठी में रखकर जला दिया जाता था। मंदिर के पुजारियों ने बताया कि अनेक बार स्वयं भारत से उच्च कुल के व्यक्तियों के अवशेष जलाने के वास्ते सुराखानी लाये जा चुके थे। बाद में उनकी राख भारत वापस भेज दी जाती थी।

बेरेजिन ने उन पुरालेखों का भी जिक्र किया है जो मंदिर और कोठरियों की दीवारों पर अंकित थे। उनका खयाल था कि ये लेख संस्कृत में लिखे हुए थे— हालाँकि कालान्तर में यह मालूम हुआ कि केवल